पद्य-रत्न-माला

संकलनकर्त्ता और सम्पादक—

महामहोपाध्याय, रायबहादुर

गौरीशङ्कर-हीराचन्द ओझा



Published by

The Educational Publishers, Ltd, Ajmer

under the authority of the

Board of High School and Intermediate Education
Rajputana (including Ajmer-Merwara)
Central India and Gwalior Ajmer

1935

वक्तव्य

सन् १९३४ ई० के जनवरी मास में राजपूताना, मध्यभारत और ग्वालियर के हाई-स्कूल तथा इंटरमीजिएट शिक्षा-बोर्ड के मन्त्री महोदय ने बोर्ड के प्रस्ताव के अनुसार मुझसे हाई स्कूल-कक्षाओं के लिये एक पद्य-सङ्कलन ग्रन्थ प्रस्तुत करने का विशेष आग्रह किया। वृद्धावस्था और शारीरिक अस्वस्थतावश मैंने इस कार्य को ग्रहण नहीं करना चाहा, परन्तु कतिपय माननीय साहित्य प्रेमी मित्रों के विशेष अनुरोध से मुझे यह स्वीकार करना पड़ा। अप्रैल मास में चुने हुए पद्यों की अस्थायी सूची बोर्ड कार्यालय में भेजी गई। तदनन्तर हिन्दी-कोर्स-कमेटी के सदस्यों के साथ दो दिन तक पूर्ण विचार विनिमय होने के पश्चात् सम्पादित पद्यों का अन्तिम निर्णय हुआ।

इस सङ्कलन ग्रन्थ में प्राचीन और अर्वाचीन काल के छब्बीस (अष्ट छाप के कवियों की अलग गिनती से तीस) प्रमुख कवियों के पद्यों का संग्रह हुआ है। जहाँ तक हो सका, इसमें हिन्दी के प्रतिनिधि-कवियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है, जिससे विद्यार्थियों को भिन्न भिन्न प्रकार की शैलियों का ज्ञान हो सके। प्रत्येक कवि के पद्यों के चुनाव में यह लक्ष्य रहा है कि जिन छात्रों के लिये यह सङ्कलन तैयार हुआ है, उन्हें उनके समझने में कठिनाई न हो। छात्रों के लिये कवियों और उनकी शैली के परिचय का महत्व जान परिशिष्ट में उनकी संक्षिप्त जीवनी देकर कविता सम्बन्धी विशेषताओं का निर्देश किया गया है। इस संग्रह में अनुचित शृङ्गारात्मक कविताओं को स्थान न देते हुए स्फूर्तिदायक एवं छात्रोपयोगी पद्यों का चुनाव किया गया है। राजस्थान और मध्यभारत के प्राचीन डिंगल साहित्य में भी उच्च कोटि की कविता मिलती है, जिसका इधर कुछ वर्षों से प्रकाशन आरम्भ हुआ है। छात्रों को इसका यत्किंचित् परिचय कराने के लिये कविराजा बाँकीदास के कुछ नीति सम्बन्धी दोहों को चुना गया है। सङ्कलन ग्रन्थों में डिंगल कविता का प्रवेशमात्र

उद्देश्य से इस संग्रह में सरल डिंगल का केवल सवा पृष्ठ रखा गया है, परन्तु आशा है कि भविष्य में तैयार होनेवाले सङ्कलनों में डिंगल साहित्य को भी उसका यथोचित स्थान प्राप्त होगा। पुस्तक के आधी छप जाने पर प्रेस ने बतलाया कि सब कविताओं का 'मेटर' निर्धारित पृष्ठ संख्या में नहीं छप सकेगा। सब कविजनों की संख्या में कमी न करते हुए विवश उनके कतिपय पद्यों को घटाना पड़ा।

आशा है, पद्यों की सुरुचि सम्पन्नता और उपादेयता को ध्यान में रखते हुए यह सङ्कलन हाई-स्कूल कक्षाओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा और इसे पढ़कर छात्रों में काव्य-प्रेम की वृद्धि तथा उच्च कोटि के पद्य साहित्य के अध्ययन की ओर प्रवृत्ति होगी। प्रस्तुत ग्रन्थ के बहुत थोड़े समय में छपने पर भी इसका प्रूफ संशोधन सावधानीपूर्वक हुआ है। फिर भी छपते समय कहीं-कहीं अनुस्वार तथा मात्राओं के टूटने और अक्षरों के हट जाने से कुछ शब्दों का रूपान्तर हो गया है, अतः सहृदय पाठक उन्हें सुधार कर पढ़ें।

मैं उन सब कविजनों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं का इस पुस्तक में संग्रह करने की मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान की है। साथ ही प्रयाग के इंडियन प्रेस और काशी नागरीप्रचारिणी सभा के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन आवश्यक है। अन्त में अपने आयुष्मान् पुत्र प्रोफेसर रामेश्वर ओझा, एम्० ए० का नामोल्लेख आवश्यक है, क्योंकि यदि सङ्कलन, सम्पादन, संशोधन आदि सब कार्यों में मुझे उसका पूर्ण सहयोग और अनवरत परिश्रम सुलभ न होता, तो इस सङ्कलन ग्रन्थ को हिन्दी प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करना मेरे लिए असम्भव नहीं तो अतिदुष्कर अवश्य था।

अजमेर,
वैशाखी पूर्णिमा,
सं० १९९२ वि०

गौरीशङ्कर-हीराचन्द ओझा

विषय-सूची



---

* कालक्रमानुसार इनका स्थान भूषण के पश्चात् होना चाहिए —सं०

† अन्तिम दो पद्य गीतावली के हैं।

पद्य-रत्न-माला

कबीर

साखी

सात समँद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, हरि-गुण लिख्या न जाइ॥ १॥
कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन माहिं।
ऐसैं घटि घटि राम हैं, दुनिया देखै नाहिं॥ २॥
सो साईं तन में बसै, ज्यूँ पुहपन में बास।
कस्तूरी कै मिरग ज्यूँ, फिरि फिरि सूँघै घास॥ ३॥
पैंडे मोती बीखर्‌यो, अंधा निकस्या आइ।
जोति बिना जगदीस की, जगत उलंघ्याँ जाइ॥ ४॥
हरिया जाँणै रूँखडा, उस पाणी का नेह।
सूका काठ न जाँणई, कबहूँ बूठा मेह॥ ५॥
झिरमिर झिरमिर बरखिया, पाँहण ऊपरि मेह।
माटी गलि सैंजल भई, पाँहण वोहि तेह॥ ६

कमोदनी जलहरि बसै, चन्दा बसै अकासि।
जौ जाही का भावता, सो ताही कै पासि ॥ ७ ॥
पोथी पढि पढि जग मुवा, पंडित हुवा न कोइ।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढै सु पंडित होइ ॥ ८ ॥
चातक सुतहिं पढावही, आन नीर मति लेइ।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति बूँद चित देइ ॥ ९ ॥
पपिहा को पन देखि करि, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड्या, तऊ न बोरी चंच ॥ १० ॥
साँझ पडी, दिन आथव्यो, चकवी दीन्ही रोइ।
चल चकवा वा देस में, रैण कदे नहिं होइ ॥ ११ ॥
अम्बर कुजाँ कुरलियाँ, गजि रहे सब ताल।
जिनिपै गोविंद बीछुटे, तिनिकै कवण हवाल ? ॥ १२ ॥
आँखडियाँ झाँई पडी, पंथ निहारि निहारि।
जीभडियाँ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि ॥ १३ ॥
विरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैण।
माँगै दरस मधूकरी, छक्या रहै दिन रैण ॥ १४ ॥
नाम भजौ तौ अब भजौ, बहुरि भजौगे कब्ब ?
हरियर हरियर रूँखडा, ईंधण हो गये सब्ब ॥ १५ ॥
जौ ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सौ कुँमिलाइ।
जौ चिणिया सो ढहि पडै, जौ आया सो जाइ ॥ १६ ॥
काची काया, मन अथिर, थिर थिर काम करंत।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधडक फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत ॥ १७ ॥

माली आवत देखि करि, कलियन करी पुकार।
फूले फूले चुनि लिये, काल्हि हमारी बार॥ १८॥
कहा चुनावै मेडियाँ, लाँबी भींत उसारि?
घर तौ साढे तीन हथ, घना तौ पौने च्यारि॥ १९॥
कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गली, बहुरि न देखै आइ॥ २०॥
सातौं सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पडे, बैसण लागे काग॥ २१॥
कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि—
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि?॥ २२॥
तन कौ जोगी सब करैं, मन कौ बिरला कोइ।
सब सिधि सहजै पाइये, जो मन जोगी होइ॥ २३॥
साधु भया तौ क्या भया, बोलै नाहिं बिचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार॥ २४॥
साधू ऐसा चाहिये, जैसैं सूप सुभाइ।
सार-सार कौ गहि रहै, थोथा देइ उडाइ॥ २५॥
खूँदन तौ धरती सहै, बाढ सहै बनराइ।
संत सहै दुरजन-बचन, दूजै सह्या न जाइ॥ २६॥
करगस सम दुरजन बचन, रहै संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि?॥ २७॥
काच, कथीर, अधीर नर, जतन करत है भंग।
साधू कंचन ताइये, चढै सवाया रंग॥ २८॥

सन्त न बाँधै गाँठडी, पेट समाता लेइ।
साईं सूँ सनमुख रहै, जहाँ माँगै तहाँ देइ॥ २९॥
साईं, इतना दीजिये, जामें कुटुम समाइ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाइ॥ ३०॥
जौ जल बाढै नाव में, घर मे बाढै दाम।
दोऊँ हाथ उलींचिये, यहु सज्जन कौ काम॥ ३१॥
केला तबहि न चेतिया, जब ढिग लागी बेरि।
अबके चेते क्या भया, काँटनि लीन्ही घेरि॥ ३२॥
सूरा तब ही परखिये, लडै धणी कै हेत।
पुरिजा - पुरिजा ह्वै पडै, तऊ न छाँडै खेत॥ ३३॥
कायर बहुत पमाँवहीं, बहकि न बोलै सूर।
काम पड्याँ ही जाँणिये, किसकै मुख परि नूर॥ ३४॥
रितु बसंत जाचक भया, हरखि दिया द्रुम पात।
तातैं नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात॥ ३५॥
सुख कै माथे सिल परै, नाँम हृदय तैं जाइ।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल-पल नाँम रटाइ॥ ३६॥

पद

करम-गति टारे नाहिं टरी।
मुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, सोध के लगन धरी।
सीता-हरन, मरन दसरथ को, वन में बिपति परी॥
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारधि, कहँ वह मिरगचरी।
सीया को हरि लै गो रावन, सुबरन लंक जरी॥

नीच हाथ हरिचंद बिकाने, बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग, गिरगिट जोन परी॥
पांडव जिनके आप सारथी, तिनपर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो, जदुकुल नास करी॥
राहु-केतु औ भानु-चन्द्रमा, बिधि सजोग परी।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, होनी होके रही॥ १॥

माया महा ठगिनि हम जानी।
निरगुन फाँस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी॥
केसव के कमला ह्वै बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी, तीरथ मे भई पानी॥
योगी के योगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौडी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै 'कबीर' सुनो हो सन्तो, यह सब अकथ कहानी॥ २॥

नाम सुमिर, पछतायगा।
पापी जियरा लोभ करत है, आज काल उठि जायगा॥
लालच लागी जनम गँवाया, माया भरम भुलायगा।
धन जोबन का गरब न कीजै, कागद ज्यों गलि जायगा॥
जब जम आय केस गहि पटकै, ता दिन कछु न बसायगा।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं, तो मुख चोटा खायगा॥
धरमराय जब लेखा माँगे, क्या मुख लेके जायगा।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, साध सङ्ग तरि जायगा॥ ३॥

मलिक मुहम्मद जायसी

गोरा की वीर-गति

मतैं बैठि बादल औ गोरा। सो मत कीज परै नहिं भोरा॥
सुबुधि सौं ससा सिंघ कहँ मारा। कुबुधि सिंघ कूआँ परि हारा॥
जस तुरकन राजा छर साजा। तस हम साजि छोड़ावहिं राजा॥
सोरह सै चंडोल सँवारे। कुँवर सँजोइल कै बैठारे॥
पदमावति कर सजा बिवानू। बैठि लोहार न जानै भानू॥
साजि सबै चंडोल चलाये। सुरँग ओहार मोति बहु लाये॥
भये संग गोरा बादल बली। कहत चले—'पदमावति चली'॥
बिनवा बादसाह सौं जाई—। अब रानी पदमावति आई॥
बिनती करै आइ हौं दिल्ली। चितउर कै मोहि स्यों है किल्ली॥
एक घरी जौ अज्ञा पावौं। राजहिं सौंपि मँदिर महँ आवौं॥

इहाँ उहाँ कर स्वामी दुओ जगत मोहि आस।
पहिले दरस देखावहु तौ पठवहु कैलास॥ १॥

अज्ञा भई—'जाइ एक घरी'। छूँछि जो घरी फेरि बिधि भरी॥
चलि निवान राजा पहँ आवा। सँग चंडोल जगत सब छावा॥
पदमावति के भेस लोहारू। निकसि काटि बँदि कीन्ह जोहारू॥
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरग, सिंघ अस गाजा॥
गोरा बादल खाँड़े काढ़े। निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भये ठाढ़े॥
लेइ राजा चितउर कहँ चले। छूटेउ सिंघ मिरिग खलभले॥
चढ़ा साहि चढ़ि लाग गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी॥

फिरि गोरा बादल सौं कहा— । 'गहन छूटि पुनि चाहै गहा ॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू । अब इहै गोइ इहै मैदानू' ॥
तुइ अब राजइ लेइ चलु गोरा । हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा ॥
सौ पावौं बादल अस नाऊँ । जो मैदान गोइ लेइ आऊँ ॥
आजु खडग चौगान गहि, करौं सीस रिपु गोइ, ।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ ॥ २ ॥

तब अगमन होइ गोरा मिला— । 'तुइ राजइ लेइ चलु, बादला ! ॥
मैं अब आउ भरी औ भूँजी । का पछिताव आउ जौ पूजी ॥
बहुतहि मारि मरौं जौ जूझी । तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी' ॥
कुँवर सहस सग गोरा लीन्हे । और वीर बादरा सँग कीन्हे ॥
गोरहि समदि मेघ अस गाजा । चला लिये आगे करि राजा ॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढा । पुरुस देख चाव मन बाढा ॥
आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ ।
परति आव जग कारी, होति आव दिन साँझ ॥ ३ ॥

फिरि आगे गोरा तब हाँका । 'खेलौं, करौं आजु रन साका' ॥
ओनई घटा चहूँ दिसि आई । छूटहिं बान मेघ झरि लाई ॥
भई बगमेल, सेल घनघोरा । औ गजपेल, अकेल सो गोरा ॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा । भार पहार जूझ कर काँधा ॥
लगे मरै गोरा के आगे । बागु न मोर घाव मुख लागे ॥
जैस पतग आग धँसि लेई । एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
टूटहिं सीस, अधर धर मारै । लोटहिं कबहि कबध निरारै ॥
कोई परहिं रुहिर होइ राते । कोई घायल घूमहिं माते ॥

कोइ खुर खेह गये भरि भोगी। भसम चढाइ परे होइ जोगी ॥
घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब निबुरे, गोरा रहा अकेल ॥ ४ ॥
गोरै देख, साथि सब जूझा। 'आपन काल नियर भा' बूझा ॥
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहि मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन बिदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यो घोडे टूटै असवारू ॥
लोटहिं सीस कबध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
हस्ती घोड़ धाइ जो घूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ॥
भइ अज्ञा सुलतानी—वेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे लिये पदारथ साथ ॥ ५ ॥

सबै कटक मिलि गोरेहि छेंका। गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा ॥
तुरुक बोलावहि—बोलै बाहाँ। गोरै मीचु धरी जिउ माहाँ ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ के मोंछ हाथ को मेला ॥
सिंघ जियत नहि आपु धरावा। मुये पाछ कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख सौंहहि दीठी। जौ लगि जियै देइ नहि पीठी ॥
'रतनसेन जो बाँधा मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुहिर न धोवौं तौ लगि होइ न रात' ॥ ६ ॥
सरजा वीर सिंघ चढि गाजा। आइ सौंह गोरा सौं बाजा ॥
पहुँचा आइ सिंघ असवारू। जहाँ सिंघ गोरा बरियारू ॥

मारेसि साँग, पेट महँ धँसी। काढेसि हुमुकि, आँति भुइँ खसी॥

भाट कहा—'धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधिकै, तुरय देत है पाँव'॥ ७॥

कहेसि अंत अब भा भुइँ परना। अंत त खसे खेह सिर भरना॥
कहिकै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूल पहँ आवा॥
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ। परा खड़ग जनु परा निहाऊ॥
बज्र क साँग बज्र कै डाँडा। उठी आगि तस बाजा खाँडा॥
मानहु बज्र बज्र सौं बाजा। सब ही कहा परी अब गाजा॥

तस मारा हठि गोरै, उठी बज्र कै आगि।
कोई नियरै नहिं आवै, सिंघ सदूरहि लागि॥ ८॥

तब सरजा कोपा बरिबंडा। जनहु सदूर केर भुजदंडा॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा। जानहु टूटि परि सिर गाजा॥
ठाँठर टूट, फूट सिर तासू। स्यों सुमेर जनु टूट अकासू॥
धमकि उठा सब सरग पतारू। फिरि गइ दीठि फिरा संसारू॥
भइ परलय अस सब ही जाना। काढा खड़ग सरग नियराना॥
तस मारेसि स्यों घोड़े काटा। धरती फाटि सेस फन फाटा॥

गोरा परा खेत महँ, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान॥ ९॥



महात्मा सूरदास

विनय-वाणी

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस, अन्तर्गत ही भावै ॥
परम स्वादु सब ही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।
मन बानी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु, निरालम्ब मन चकृत धावै ।
सब विधि अगम विचारहिं ताते, 'सूर' सगुन लीला पद गावै ॥

जापर दीनानाथ ढरे ।
सोइ कुलीन वडो सुन्दर सोइ, जिनपर कृपा करे ॥
राजा कौन वड़ो रावन तें, गर्वहि गर्व गरे ।
रङ्क सु कौन सुदामाहू तें, आपु समान करे ॥
रूपव कौन अधिक सीता तें, जन्म वियोग भरे ।
अधिक पुरुष कौन कुनिजा तें, हरि पति पाई वरे ॥
योगी कौन वडो शंकर तें, ताको काम छरे ।
कौन विरक्त अधिक नारद सों, निसि दिन भ्रमत फिरे ॥
अधम सु कौन अजामिलहू तें, यम तहँ जात डरे ।
'सूरदास' भगवन्त भजन विन, फिर फिर जठर जरे ॥

अविगत गति जानी न परै ।
मन बच अगम अगाध अगोचर, केहि विधि बुधि सँचरै ॥
अति प्रचण्ड पौरुष बल पाये, केहरि भूख मरै ।

बिन आसा बिन उद्यम कीने, अजगर उदर भरै ॥
रीते भरै भरे पुनि ढोरै, चाहे फेरि भरै ।
कबहुँक तृन बूड़ै पानी में, कबहूँ सिला तरै ॥
बागर ते सागर करि रारौ, चहुँ दिसि नीर भरै ।
पाहन बीच कमल बिगसाही, जल में अगिनि जरै ॥
राजा रङ्क रङ्क तें राजा, लै सिर छत्र धरै ।
'सूर' पतित तरि जाइ तनिक में, जो प्रभु नेकु ढरै ॥

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ॥
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल ।
भरम भर्‌यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल ॥
तृस्ना नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दै भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल ।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल ॥

जन्म सिरानो अटके अटके ।
राज काज सुत पितु की डोरी, बिन बिवेक फिर्‌यो भटके ॥
कठिन जु ग्रंथि परी माया की, तोरी जात न झटके ।
ना हरि भजन न सन्त समागम, रह्यो बीच ही लटके ॥
ज्यों बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नटके ।
'सूरदास' सोभा क्यों पावै, पिय बिहीन धन मटके ॥

जग में जीवत ही को नातो ।
मन बिछुरे तनु छार होइगो, कोउ न बात पुछातो ॥
मैं मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच सुहातो ।
विषय असक्त रहत निसि बासर, सुख सीरो दुख तातो ॥
साँच झूँठ करि माया जोरी, आपुन रूखो खातो ।
'सूरदास' कछु थिर नहिं रहई, जो आयो सो जातो ॥

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उडि जहाज को पछी, फिरि जहाज पै आवै ।
कमल-नैन को छाँडि महातम और देव को ध्यावै ॥
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै ।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

अपुनपौ आपुन ही बिसरयो ।
जैसे स्वान काच मन्दिर मे, भ्रमि भ्रमि भूँकि परयो ॥
हरि सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृण सूँघि मरयो ।
ज्यों सपने में रङ्क भूप भयो, तसि करि अरि पकरयो ॥
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखिकै आपुन कूप परयो ।
जैसे गज लखि फटिक-सिला में दसननि जाइ अरयो ॥
मरकट मूठि छाँडि नहि दीन्ही घर घर द्वार फिरयो ।
'सूरदास' नलिनी को सुवटा कहि कौने जकरयो ॥

छाँड़ि मन, हरि-विमुखन को संग ।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग ।
कहा भयो पयपान कराये, विख नहिं तजत भुअंग ॥
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूखन अंग ॥
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै वेहि छंग ।
पाहन पतित बान नहिं भेदत, रीतो करत निखंग ॥
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग ॥

बाल-लीला

कर गहि पग अँगुठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढे पालने अकेले, हरषि हरषि अपने रँग खेलत ॥
सिव सोचत विधि बुद्धि विचारत, बट बाढ्यो सागर जल झेलत ।
बिडरि चले घन प्रलय जानिकै, दिगपति दिग दंतीन सकेलत ॥
मुनि मन भीत भये भव कंपति, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत ।
उन ब्रज-बासिन बात न जानी, समुझे 'सूर' सकट पगु पेलत ॥

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताइ ।
खेलत कुँअर कनक आँगन मे, नैन निरखि छवि छाइ ॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति, बहुविधि सुरँग बनाइ ।
मानो नवघन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाइ ॥
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन, मोहन मुख बगराइ ।
मानो प्रगट कंज पर मंजुल, अलि अवली फिरि आइ ॥

नील स्वेत पर पीत लाल मनि, लटकनि भाल रुनाइ।
सनि गुरु असुर देव गुरु मिलि मनु, भौम सहित समुदाइ॥
दूध-दंत-दुति कहि न जाति अति, अद्भुत इक उपमाइ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनु, घन में विद्यु छिपाइ॥
खंडित वचन देत पूरन सुख, अल्प जल्प जल-पाइ।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित, 'सूरदास' बलि जाइ॥

जागिये ब्रजराज कुँअर, कमल कुसुम फूले।
कुमुद-वृन्द सकुचत भये, भृङ्गलता भूले॥
तमचुर खग रौर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गौ खिरकन में, बछरा हित धाई॥
विधु मलीन रवि प्रकास, गावत नर-नारी।
'सूर' स्याम प्रात उठौ, अंबुज कर धारी॥

खेलत स्याम ग्वालन संग।
सुबल, हलधर अरु सुदामा करत नाना रंग॥
हाथ तारी देत भाजत, सबै करि-करि होड़।
बरज हलधर—स्याम तुम जनि, चोट लगिहै गोड़॥
तब कह्यो—मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात।
मोरी जोरी है सुदामा, हाथ मारे जात॥
बोलि तब उठे श्रीसुदामा, जाहु तारी मारि।
आगे हरि पाछे सुदामा, धरयो स्याम हँकारि॥
जानिकै मैं रह्यो ठाढो छुवत कहा जु मोहि?
'सूर' हरि खीजत सखा सों, मनहिं कीनो कोहि॥

मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत-मोल को लीनो, तोहि जसुमति कब जायो।
कहा कहौं एहि रिस के मारे, खेलनहौं नहिं जातु॥
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तातु॥
गोरे नंद जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर।
चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, यसुमति सुनि सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही का धूत।
'सूर' स्याम मो गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥

निगम स्वरूप देखि गोकुल हरि।
जाको दरस दूरि देवन कों, सो बाँध्यो यसुदा ऊखल धरि॥
चुटुकिन दै दै ग्वाल गवावत, नाचत कान्ह बाल लीला धरि।
जेहि डर भ्रमत पवन रवि ससि जल, सो क्यों डरै लकुटिया के डरि॥
छीर-समुद्र सयन सतत जेहि, माँगत दूध पतोखी दै भरि।
'सूरदास' गुन के गाहक हरि, रसना गाइ गये अनेक तरि॥

कालिय-मर्दन

चरन कमल बंदौं जगदीस जे गोधन के सँग धाये।
जे पद कमल धूरि लपटाने, कर गहिकै गोपी उर लाये॥

जे पद-कमल युधिष्ठिर पूजे, राजसूय पै चलि आये।
जे पद कमल पितामह भीषम, भारत में देखन पाये॥
जे पद-कमल संभु चतुरानन, हृदय-कमल अन्तर राखे।
जे पद कमल रमा-उर-भूषन, वेद भागवत मुनि भाखे॥
जे पद कमल लोक पावन त्रय, बलि राजा के पीठ धरे।
ते पद-कमल 'सूर' के स्वामी, काली फन पर निर्त करे॥

उद्धव का ब्रज-गमन

हंस काग को सङ्ग भयो।
कहँ गोकुल कहँ गोप-गोपिका, विधि यह सङ्ग दयो॥
जैसे कंचन काँच संग, ज्यों चंदन संग कुगंधि।
जैसे खरी कपूर दोउ एक, यह भई ऐसी संधि॥
जल बिन मीन रहत कहुँ न्यारे, यह सो रीति चलावत।
जब ब्रज की बातें यहि कहियत, तनहि तबहिं उचटावत॥
याका ज्ञान थापि ब्रज पठऊँ, और न याहि उपाय।
सुनहुँ 'सूर' याको वन पठऊँ, यहै बनैगो दाँव॥

ऊधो तुम यह निहचै जानो।
मन वच क्रम मैं तुमहिं पठावत, ब्रज को तुरत पलानो॥
पूरन ब्रह्म अलख अविनासी, ताके तुम हो ज्ञाता।
रेख न रूप जाति कुल नाहीं, जाके नहिं पितु माता॥
यह मत दै गोपिन को आवहु, विरह न मन में भापति।
'सूर' तुरत तुम जाउ कहौ यह, ब्रह्म बिना नहिं आसति॥

भ्रमर-गीत

मधुप, तुम कहौ कहाँ तें आये हौ।
जानति हौं अनुमान आपने, तुम यदुनाथ पठाये हौ॥
वैसेहि बरन बसन तनु वैसे, वै भूषण सजि ल्याये हौ।
लै सरबसु सँग स्याम सिधारे, अब का पर पहिराये हौ॥
अहो मधुप, एकै मन सबको, सु तौ वहाँ लै छाये हौ।
अब यह कौन सयान बहुरि ब्रज, जा कारन उठि आये हौ॥
मधुबन की मानिनी मनोहर, तहीं जाहु जहँ भाये हौ।
'सूर' जहाँ लौं स्याम गात हैं, जानि भले करि पाये हौ॥

मधुकर, हमहीं क्यों समुझावत।
बारबार ज्ञान गीता ब्रज, अबलनि आगे गावत॥
नँद-नन्दन बिनु कपट कथा ए, कत कहि रुचि उपजावत।
स्रक चन्दन जो अंग सुधारत, कहि कैसे सुख पावत॥
देखि बिचारत ही जिय अपने, नागर हौ जु कहावत।
सब सुमनन पर फिरौ निरखि करि, काहे कमल बँधावत॥
चरन कमल कर नयन कमल कर, नयन कमलवर भावत।
'सूरदास' मनु अलि अनुरागी, केहि बिधि हौ बहरावत॥

सुनहु गोपी हरि को सन्देस।
हरि समाधि अन्तर्गति ध्यावहु, यह उनको उपदेस॥
वै अबिगति अबिनासी पूरन, सब घट रहे समाइ।
निर्गुन ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुराननि गाइ॥

सगुन रूप तजि निर्गुन ध्यावो, इक चित इक मन लाइ।
यह उपाय करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ॥
दुसह सँदेस सुनत माधौ को, गोपीजन बिलखानी।
'सूर' बिरह की कौन चलावै, बूड़त मन बिन पानी॥

सुदामा-चरित

दूरिहिं तें देखे बलबीर।
अपने बाल सुखा सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर॥
पौंढे हुते प्रयंक परम रुचि, रुक्मिनि चमर डोलावत तीर।
उठि अकुलाइ अगमने लीने, मिलत नैन भरि आये नीर॥
तेहि आसन बैठारि स्यामघन, पूछी कुसल कह्यौ मन धीर।
ल्याये हौ सु नेहु किन हमको, अब कहा राखि दुरावत चीर॥
दरसन परस दृष्टि सभापन, रही न उर अंतर कछु पीर।
'सूर' सुमति तन्दुल चबात ही, कर पकर्‌यो कमला भइ भीर॥

ऐसी प्रीति की बलि जाउँ।
सिंहासन तजि चले मिलन को, सुनत सुदामा नाउँ॥
गुरु बांधव अरु बिप्र जानिकै, हाथनि चरन पखारे।
अंक माल दै कुसल बूझिकै, अर्धासन बैठारे॥
अर्धांगी बूझति मोहन सों, कैसे हितू तुम्हारे।
दुर्बल दीन छीन देखति हौं, पाउँ कहाँ तें धारे॥
सन्दीपन के हम औ सुदामा, पढे एक चटसार।
'सूर' स्याम की कौन चलावै, भक्तनि कृपा अपार॥

कहो कैसे मिले स्याम सँघाती ।
कैसे गये सु कन्त कौन विधि, परसे वस्त्र कुचील कुजाती ॥
सुनि सुदर प्रतिहार जनायो, हरि समीप रुक्मिनी जहाँ ती ।
उभै मुठी लीनी तन्दुल की, सपति सचित करी ही थाती ॥
'सूर' सु-दीनबन्धु करुनामय, करत बहुत जो श्री न रिसाती ॥

गोपाल बिना और मोहिं ऐसो कौन सँभारै ।
हँसत हँसत हरि दौरि मिले सुन, उर तें उर नहि टारै ॥
छीन अग जीरन वस्त्र, दीन मुख निहारै ।
मम तन पथ रज लागी, पीत पटसों झारै ॥
सुन्दर सेज आसन दीन्हों, सु हाथ पाय पखारै ।
हरि हित हर गग धरे, पद जल सिर ढारै ॥
कहि कहि गुरु गेह-कथा, सकल दुख निवारै ।
न्याय निरख 'सूरदास' हरि पर सब वारै ॥



अष्टछाप

अष्टछाप-पदावली

कहा करौ वैकुठहि जाय ।
जहँ नहिं नँद जहँ नहीं जसोदा, जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय ॥
जहँ नहि जल जमुना को निरमल, और नहीं कदमन की छाय ।
'परमानँद' प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरि जाय बलाय ॥

—परमानन्ददास ।

सन्तन का सिकरी सन काम ।
आवत जात पनहियाँ टूटीं, विसरि गयो हरि-नाम ॥
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिन, और सबै बेकाम ॥

तुम नीके दुहि जानत गैया ।
चलिये कुँवर रसिक-मन-मोहन, लगौं तिहारे पैया ॥
तुमहि जानि करि कनक दोहिनी, घर ते पठई मैया ।
निकटहि है यह खरिक हमारो, नागर लेहुँ बलैया ॥
देखियत परम सुदेस लरिकई, चित चुहँट्यौ सुँदरैया ।
'कुँभनदास' प्रभु मानि लई रति, गिरि गोवरधन रैया ॥

—कुंभनदास ।

जसोदा कहा कहौं हौं बात ।
तुम्हरे सुत के करतब मोपै, कहत कहे नहिं जात ॥
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस, लै माखन दधि खात ।
जो बरजौं तौ आँखि देखावै, रचहू नाहिं सकात ॥

और अटपटी कहँ लों बरनौं, छुवत पानि सों गात।
'दास चतुर्भुज' गिरिधर-गुन हों, कहति कहति सकुचात॥

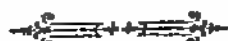
—चतुर्भुजदास।

परम दुसह श्रीकृष्ण बिरह-दुख न्याप्यो तिन में।
कोटि बरस लगि नरक भोग दुख भुगते छिन में॥
सुभग सरित के तीर धीर बल बीर गये तहँ।
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहँ॥
कुसुम धूरि धूँधरी कुंज छबि पुंजनि छाई।
गुंजत मंजु मलिन्द बेनु जनु बजति सोहाई॥
इत महकति मालती चारु चम्पक चित चोरत।
उत घनसारु तुसारु मलय मन्दारु झकोरत॥
नव मर्कत मनि स्याम कनक मनिमय ब्रजबाला।
वृन्दावन गुन रीझि मनहु पहिराई माला॥

—नंददास।

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर-सुत को उबटि न्हवावति।
करि शृंगार बसन भूषन सजि फूलन रचि रचि पाग बनावति॥
छुटे बन्द बागे अति सोभित बिच बिच चोव अरगजा लावति।
सूथन लाल फूँदना शोभित आजु कि छबि कछु कहति न आवति॥
विविध कुसुम की माला उर धरि श्रीकर मुरली बेंत गहावति।
लै दरपन देखें श्रीमुख को 'गोविंद' प्रभु चरननि सिर नावति॥

—गोविन्दस्वामी।



× कविराजा बाँकीदास

नीति-मंजरी

(दोहे)

काज अहोणो ही करै, एह प्रकृत खळ अंग।
रामण पठियो राम दिस, कर सोब्रनो कुरंग॥ १॥

सबळा खळ सूँ साँधियाँ, निबळ जाय खळ नास।
मूँसो मेळ मँजार कर, बचियो विपत विलास॥ २॥

वैरी कटक नाग विष, बीछू कँवच बाघ।
थाँसूँ दूर रहतडाँ, दूर रहै दुख दाग॥ ३॥

वैरी वैर न वीसरै, विना हिये ही वक।
राहु ग्रहै राकेस नूँ, नभ सिर मात्र निसंक॥ ४॥

वारवधू ही हरण वित, नेह जणावै नैण।
यूँ सिर लेवा ऊचरै, वैरी मीठा वैण॥ ५॥

वैरी रा मीठा वचन, फळ मीठा किंपाक।
वे खाधाँ वे मानियाँ, हुवा कृतात - खुराक॥ ६॥

वाताँ वैर विसावणा, सैणाँ तोडै नेह।
हासै विष पीणा हरप, आछा काम न एह॥ ७॥

दायण मारै दाव सूँ, नीत वात निरधार।
पेख हिरण चीतो प्रकट, मूँसै पेख मँजार॥ ८॥

पाँणी पडियौ पेख पग, दिल मत हरप दिवाल।
पैलाँ पाडण पडत पग, इण री आहिज चाल ॥ ९ ॥

ऐ नरू मूनी ऊजळा, मीठा - बोला मोर।
पूछौ सफरी पनग नूँ, क्रत ऊघडै कठोर ॥ १० ॥

सर सनळाँ आगै निबल, नीर धकै वानीर।
वाय धकै तृण जाय बच, भलौ नमण गुण भीर ॥ ११ ॥



गोस्वामी तुलसीदास

संत और असंत

वंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेई। मिलत एक दुख दारुन देई॥
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलि मल सरि ब्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

दो०—भलो भलाइहि पै लहै लहै निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु॥

खल अघ-अगुन साधु गुन-गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन-दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद, इतिहास, पुराना। बिधि-प्रपंचु गुन-अवगुन साना॥
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सजीवनु माहुरु मीचू॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन दोष बिभागा॥

दो०—जड़ चेतन गुण दोषमय विस्व कीन्ह करतार।
सत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि-विकार॥

अस विवेक जब देइ विधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृतिबस चुकइ भलाई॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
लखि सुबेष जग-बंचक जेऊ। बेषप्रताप पूजिअहि तेऊ॥
उघरहिं अंत न होई निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
कियेहु कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन-प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच-जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल-संघाता। होइ जलद जग जीवनु दाता॥

(रामचरितमानस—बालकांड)

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥
संतन के लच्छन सुनु भ्राता। अगिनित श्रुति पुरान विख्याता॥
संत असंतन्ह कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥
काटै परसु मलय सुनु भाई। निजगुन देइ सुगंध बसाई॥
तातें सुर सीसन्ह चढ़त जगवल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड॥
विषय अलंपट सील गुनाकर। परदुख दुख सुख सुख देखें पर॥

सम अभूतरिपु विमद विरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
बिगत काम मम नाम-परायन । साति बिरत बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मइत्री । द्विज पद प्रीति धरम जनयित्री ॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहि डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहि बोलहि ॥

दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पदकंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुख पुंज ॥

सुनहु असंतन केर सुभाऊ । भूलेहु संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्हकर संग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहि घालै हरहाई ॥
खलन्ह हृदय अतिताप बिसेखी । जरहिं सदा परसंपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहि पराई । हरपहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
काम क्रोध-मद-लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों । जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा । खाहिं महा अहि हृदय कठोरा ॥

दो०—परद्रोही पर दार-रत परधन पर - अपवाद ।
ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद ॥

लोभइ ओढन लोभइ डासन । सिस्नोदरपर जमपुर-त्रासन ॥
काहू के जौं सुनहि बड़ाई । स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू के देखहिं बिपती । सुखी भये मानहुँ जगनृपती ॥

स्वारथ-रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहि॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा। संत संग हरिकथा न भावा॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। वेदबिदूषक पर-धन-स्वामी॥
बिप्रद्रोह सुरद्रोह बिसेषा। दंभ कपट जिय धरे सुबेषा॥
दो०—ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृन्द बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥
परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निरनय सकल पुरान वेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥
नर सरीर धरि जे परपीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥
करहिं मोहबस नर अघ नाना। स्वारथरत परलोक नसाना॥
कालरूप तिन्ह कहुँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करम फल दाता॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभ-दायक। भजहिं मोहि सुर नर-मुनि नायक॥
संत असंतन्ह के गुन भाखे। ते न परहि भव जिन्ह लखि राखे॥
(उत्तरकांड)

लक्ष्मण-परशुराम-संवाद

तेहि अवसर सुनि सिव-धनु भंगा। आए भृगु कुल-कमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससिबदन सुहावा। रिसिबस कछुक अरुन होइ आवा॥

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
वृषभकंध उर वाहु विसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥
दो०—सांत वेष करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयेउ जहँ सब भूप॥
देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय-बिकल भुआला॥
पितुसमेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंडप्रनामा॥
जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानै जनु आइ खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा॥
आसिप दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लै गई सयानी॥
बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पदसरोज मेले दोउ भाई॥
रामु लषनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितै रहे भरि लोचन। रूप अपार मार-मद मोचन॥
दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि व्यापेउ कोपु सरीर॥
समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत वचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥
अति रिस बोले वचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा॥
वेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटौं महि जहँ लगि तव राजू॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर-नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥
मन पछिताति सीय महतारी। विधि अब सँवरी बात बिगारी॥

भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥

दो०—सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदय न हरष बिषाद कछु बोले श्रीरघुबीरु॥

नाथ संभु-धनु-भंजनिहारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करै सेवकाई। अरिकरनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहस बाहु-सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न तु मारे जैहैं सब राजा॥
सुनि मुनिबचन लषन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥
बहु धनुही तोरी लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥

दो०—रे नृपबालक कालबस बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल संसार॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नयन के भोरे॥
छुअत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू॥
बोले चितै परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥
बालकु बोलि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रिय-कुल द्रोही॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहस-बाहु-भुज-छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा॥

दो०—मातुपितहि जनि सोचबस करसि महीपकिसोर।
गरभन के अरभक दलन परसु मोर अति घोर॥
बिहँसि लषन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महाभट मानी॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कुछ कहहु सहौं रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इनपर न सुराई॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहू पा परिअ तुम्हारे॥
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरउ धनु बान कुठारा॥
दो०—जो बिलोक अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबस मनि बोले गिरा गँभीर॥
कौसिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल कालबस निज-कुल-घालक॥
भानु बस - राकेस - कलंकू। निपट निरकुंस निठुर निसंकू॥
काल-कवलु होइहि छन माहीं। कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोपु हमारा॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुँह तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं संतोष तौ पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥
दो०—सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहि आपु।
बिद्यमान रिपु पाइ रन कायर करहिं प्रलापु॥

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहिं लागि बोलावा॥
सुनत लषन के वचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू। कटुबादी बालक बधजोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाचा। अब यह मरनिहार भा साँचा॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
कर कुठार मै अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरद्रोही॥
उतर देत छाँड़ौं बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न तु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे॥
दो०—गाधिसूनु कह हृदय हँसि मुनिहि हरिअरै सूझ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि अजहुँ न बूझ अबूझ॥
कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भए नीके। गुररिन रहा सोच बड़ जी के॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटुबचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचौं नृपद्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लषन निवारे॥
दो०—लषन उतर आहुति सरिस भृगु-बर-कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल-सम बचन बोले रघु कुल-भानु॥
नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभुप्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करै अयाना॥

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी । तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥
राम बचन सुनि कछुक जुडाने । कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नखसिख रिस ब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं । काल-कूट मुख पयमुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही । नीच मीचसम देख न मोही ॥
दो०—लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल ॥
मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोप करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहि पाय पिराने ॥
जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई । जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई ॥
बोलत लषनहिं जनक डेराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ॥
थरथर काँपहि पुर नर नारी । छोट कुमार खोट बड़ भारी ॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी । रिस तन जरै होइ बलहानी ॥
बोले रामहिं देइ निहोरा । बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा ॥
मन मलीन तनु सुंदर कैसे । बिष-रस भरा कनकघट जैसे ॥
दो०—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम ।
गुरु-समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम ॥
अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले राम जोर जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक-बचन करिअ नहिं काना ॥
बररै बालकु एकु सुभाऊ । इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥

कृपा, कोप, बध बध गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहिं बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई॥
कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहिके कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोप करि कीन्हा॥
दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप रवँनि सुनि कुठारगति घोर।
परसु अछत देखौं जिअत बैरी भूप किसोर॥
बहै न हाथ दहै रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कसि काऊ॥
आजु दैव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बहुरि सिरु नावा॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥
जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भए तन राखु बिधाता॥
देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥
बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृपढोटा॥
बिहँसे लषन कहा मुनि पाहीं। मूँदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥
दो०—परसुराम तब राम प्रति बोले उर अति क्रोध।
संभु-सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रबोध॥
बंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे॥
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाँड़ु कहाउब रामा॥
छल तजि करहि समर सिवद्रोही। बंधुसहित न त मारौं तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम सिर नाए॥
गुनहु लषन कर हमपर रोषू। कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि बंदै सब काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू॥

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥
दो०–प्रभु सेवकहि समर कस तजहु विप्रबर रोसु।
वेष विलोकि कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु॥
देखि कुठार-बान-धनु-धारी। भइ लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा। बंससुभाव उतर तेइ दीन्हा॥
जौं तुम्ह अवतेहु मुनि की नाईं। पदरज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहू चूक अनजानत केरी। चहिअ विप्रउर कृपा घनेरी॥
हमहिं तुम्हहिं सरबरि कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड नाम तुम्हारा॥
देव एकगुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे॥
दो०–बार बार मुनि विप्रवर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ तहूँ बंधुसम बाम॥
निपटहि द्विज करि जानहि मोही। मैं जस विप्र सुनावौं तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अतिघोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भए पसु आई॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे। समरजग्य जग कोटिक कीन्हे॥
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि विप्र के भोरे॥
भंजेउ चाप दाप बड बाढा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढा॥
राम कहा मुनि कहहु विचारी। रिस अति बडि लघु चूक हमारी॥
छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

दो०—जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तौ अस को जग सुभट जेहि भयबस नावहिं माथ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना । समबल अधिक होउ बलवाना ॥
जौं रन हमहिं प्रचारै कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥
छत्रिय-तनु धरि समर सकाना । कुलकलंक तेहि पाँवर जाना ॥
कहौं सुभाव न कुलहि प्रसंसी । कालहु डरहिं न रन रघुबंसी ॥
बिप्रबंस कै असि प्रभुताई । अभय होइ जो तुम्हहिं डराई ॥
सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपति के । उघरे पटल परसु धर-मति के ॥
राम रमापति कर धनु लेहू । खैंचहु मिटै मोर संदेहू ॥
देत चाप आपुहिं चलि गयेऊ । परसुराम मन बिसमय भयेऊ ॥

दो०—जाना राम-प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात ।
जोरि पानि बोले बचन हृदय न प्रेम समात ॥

जय रघुबंस-बनज-बन-भानू । गहन-दनुज कुल-दहन कृसानू ॥
जय सुर-बिप्र-धेनु-हितकारी । जय मद-मोह कोह-भ्रम-हारी ॥
बिनयसील करुना-गुन सागर । जयति बचन-रचना अतिनागर ॥
सेवक-सुखद सुभग सब अंगा । जय सरीर-छबि कोटि-अनंगा ॥
करौं काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस-मन-मानस-हंसा ॥
अनुचित बचन कहेउँ अग्याता । छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ॥
कहि जय जय जय रघु-कुल केतू । भृगुपति गए बनहिं तप हेतू ॥

प्रभाती

भोर भयो जागहु, रघुनंदन !
गत-ब्यलीक, भगतनि-उर-चंदन ॥
ससि करहीन, छीनदुति तारे ।
तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे ! ॥
बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने ।
लै पराग रस मधुप उड़ाने ॥
अनुजसखा सब बोलनि आए ।
बंदिन्ह अति पुनीत गुन गाए ॥
मनभावतो कलेऊ कीजै ।
'तुलसिदास' कहँ जूँठनि दीजै ॥

प्रात भयो तात, बलि, मातु, बिधु बदन पर
मदन वारौं कोटि, उठौ प्रानप्यारे ।
सूत मागध बंदि बदत बिरुदावली,
द्वार सिसु अनुज प्रियतम तिहारे ।
कोक गतसोक अवलोकि ससि छीनछबि,
अरुनमय गगन, राजत रुचिर तारे ।
मनहुँ रबिबाल-मृगराज तमनिकर-करि
दलित, अति ललित मनिगन बिथारे ।
सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक
केकि रव कलित, बोलत बिहग बारे ॥

मनहुँ मुनिवृंद, रघुवसमनि ! रावरे
गुनत गुन आस्रमनि सपरिवारे ।
सरनि बिकसित कजपुज मकरंद वर,
मजुतर मधुर मधुकर गुजारे ।
मनहुँ प्रभुजन्म सुनि चैन अमरावती,
इन्दिरानद मंदिर सँवारे ।
प्रेम सम्मिलित वर वचन-रचना अकनि
राम राजीव लोचन उघारे ।
दास 'तुलसी' मुदित, जननि करै आरती,
सहज सुंदर अजिर पाँव धारे ॥

जागिए कृपानिधान जानराय रामचद्र !
जननी कहै बारबार भोर भयो प्यारे ।
राजिवलोचन विसाल, प्रीति-वापिका मराल,
ललित कमल-वदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित, विगत सर्वरी, ससाक किरनिहीन,
दीन दीपजोति, मलिन दुति समूह तारे ।
मनहुँ ज्ञान घन प्रकास, बीते सब भव-बिलास
आसत्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे ॥
बोलत खगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीत
सुनहु स्रवन, प्रानजीवन धन, मेरे तुम बारे ।
मनहुँ बेद बंदी मुनिवृंद सूत मागधादि विरुद
बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥

विकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
जनु विराग पाइ सकल सोक कूप गृह विहाइ
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे॥
सुनत वचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल विपुल, दुख-कदंब दारे।
'तुलसिदास' अति अनंद, देखिकै मुखारबिंद,
छूटै भ्रमफंद परम मंद द्वंद भारे॥

बोलत अवनिप-कुमार ठाढे नृप-भवन-द्वार,
रूप-सील-गुन उदार जागहु मेरे प्यारे।
बिलखित कुमुदिनि, चकोर, चक्रवाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग, गुंजत अलि न्यारे॥
रुचिर मधुर भोजन करि, भूषन सजि सकल अंग,
संग अनुज बालक सब विविध बिधि सँवारे।
करतल गहि ललित चाप भंजन रिपु निकर-दाप,
कटितट पटपीत, तून सायक अनियारे॥
उपवन मृगया-बिहार-कारन गवने कृपाल,
जननी मुख निरखि पुन्यपुंज निज बिचारे।
'तुलसिदास' संग लीजै, जानि दीन अभय कीजै,
दीजै मति बिमल गावै चरित वर तिहारे॥

गंगा-पार-गमन

सवैया

नाम अजामिल से खलकोटि अपार नदी भव बूडत काढे ।
जे सुमिरे गिरि मेरु सिला-कन, होत अजाखुर वारिधि बाढे ॥
'तुलसी' जेहिके पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढे ।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढे ॥

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू ।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यो समुझाइहौं जू ? ॥
'तुलसी' अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ?।
बरु मारिए मोहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढाइहौं जू ॥

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पायँ पखारिकै नाव चढाइहौं, आयसु होत कहा है ? ।
'तुलसी' सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥

घनाक्षरी

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछु वेद ना पढाइहौं ।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू !
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढाइहौं ? ॥

गौतम की घरनी ज्यो तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सो निपाद ह्वैके बाद न बढाइहौं।
'तुलसी' के ईस राम रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढाइहौं ॥

जिनको पुनीत वारि धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु वेद कहै गाइकै।
जिनको जोगीन्द्र मुनिवृन्द देव देह भरि
करत विराग जप जोग मन लाइकै।
'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइकै॥
तेई पायँ पाइकै चढाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइकै ॥

प्रभुरुख पाइकै बोलाइ बाल घरिनिहि,
बन्दिकै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पायँ पीयत पुनीत वारि फेरि फेरि ॥
'तुलसी' सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी, असयानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि हेरि ॥

राम का वन-गमन

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रवि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति कारन कवन बिसेखि॥

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमन्त्र जगावहु जाई। कीजिअ काज रजायसु पाई॥
गये सुमन्त्र तब राउर पाहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति-बिषाद-बसेरा॥
पूँछे कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई॥
कहि जय जीव बैठि सिर नाई। देखि भूप गति गयेउ सुखाई॥
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ छूँछी॥

दो०—परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहेउ न मरमु महीसु॥

आनहु रामहि बेगि बुलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥
चलेउ सुमन्त्र राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्ह कछु रानी॥
सोच बिकल मग परै न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ॥
उर धरि धीरज गयेउ दुआरे। पूँछहिं सकल देखि मनुमारे॥
समाधान सो करि सबही का। गयेउ जहाँ दिनकर-कुल टीका॥
राम सुमन्त्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पितासम लेखा॥
निरखि बदनु कहि भूप-रजाई। रघुकुल-दीपहि चलेउ लिवाई॥
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

दो०—जाइ देखि रघुबंस-मनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहु बृद्ध गजराजु॥
सूखहिं अधर जरै सब अंगू। मनहुँ दीन मनि हीन भुअंगू॥
सरुष समीप देखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई॥
करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूछी मधुर-बचन महतारी॥
मोहि कहु, मातु, तात दुख-कारन। करिअ जतन जेहि होइ निवारन॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्हपर बहुत सनेहू॥
देन कहेउ मोहिं दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहि सुहाना॥
सो सुनि भयउ भूपउर सोचू। छाँडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥
दो०—सुत-सनेह इत बचन उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥
निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान, बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ-समाना॥
जनु कठोरपनु धरे सरीरू। सिखै धनुष-विद्या बर बीरू॥
सब प्रसंगु रघुपतिहिं सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसकाइ भानु-कुल भानू। रामु सहज आनन्द निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग-बिभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड-भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु-पितु-तोषनिहारा। दुरलभ जननि सकल संसारा॥
दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु-आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़-समाजा॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमिय लेहि बिषु मागी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं॥
अम्ब एकु दुख मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥
राउ धीर गुन-उदधि अगाधू। भा मोहितें कछु बड़ अपराधू॥
तातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

दो० सहज सरल रघुबर-बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जिमि बक्र गति जद्यपि सलिल समान॥

रहसी रानि रामरुख पाई। बोली कपटसनेह जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराधु जोगु नहिं ताता। जननी-जनक-बन्धु सुखदाता॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम पितु मातु बचन रत अहहू॥
पितहिं बुझाइ कहहु, बलि सोई। चौथेपन जेहि अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥
लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहिं मातुबचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाए॥

दो०—गइ मुरुछा रामहिं सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम-आगमन कहि बिनय समयसम कीन्ह॥

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥

लिये सनेह-बिकल उर लाई। गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितै रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारिप्रवाहू॥
सोकबिबस कछु कह न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेसहि कहै निहोरी। बिनती सुनहु सदा सिव मोरी॥
आसुतोष तुम अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

दो०—तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहिं देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊँ। नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊँ॥
सब दुख दुसह सहावउ मोहीं। लोचन-ओट रामु जनि होहीं॥
अस मन गुनै राउ नहिं बोला। पीपर-पात-सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेम-बस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई॥
अति लघु-बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाईंहिं पूछेउँ माता। सुनि प्रसगु भये सीतल गाता॥

दो०—मंगल-समय सनेह-बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितुमातु प्रानसम जाके॥
आयसु पालि जनम-फलु पाई। ऐहौं बेगिहि होउ रजाई॥ आन
बिदा मातु सन आवौं माँगी। चलिहौं बनहिं बहुरि पग लागी॥

अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ बिषादु नहि धीरज होई॥
दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन-रस-कटकई उतरी अवध बजाइ॥
मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहि कैकइहि गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥
निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहति चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु-बन आगी॥
पालव बैठि पेड़ु एहि काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
सदा रामु एहि प्रानसमाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥
सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिम्ब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि-गति भाई॥
दो०—काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥
का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचार नहिं कुमतिहि दीन्हा॥
एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥
जरहिं बिषमजर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर-गन सूखत पानी॥

दो०–कहि प्रिय वचन विवेकमय कीन्ह मातु परितोप।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन-गुन दोप॥
मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जो चहहू। वचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोरि सासु-सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई॥
एहितें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमबिकल मतिभोरी॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुन्दरि, समुझायेहु मृदु वानी॥
कहौं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि, मातुहित राखौं तोही॥
दो०–गुरु-श्रुति-संमत धरमफलु पाइअ विनहि कलेस।
हठवस सब संकट सहे गालव नहुप नरेस॥
मैं पुनि करि प्रमान पितुबानी। वेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवनु सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेमवस वामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकर भारी। घोर घामु, हिम, वारि, बयारी॥
कुसकंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पदत्राना॥
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥
दो०–भूमिसयन वलकल-बसन असन कंद-फल-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल॥

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपटवेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागै अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसिचर निकर नारि-नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि, तुम्ह भीरु सुभाये॥
हंसगवनि, तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू॥
मानस-सलिल-सुधा-प्रतिपाली। जिअइ कि लवनपयोधि मराली॥
नव-रसाल-बन-बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि, दुखु कानन भारी॥

दो०—सहज सुहृद-गुरु स्वामि सिख जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हितहानि॥

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद-चन्द निसि जैसे॥
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥
लागि सासुपग कह कर जोरी। छमबि देबि, बड़ि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय बियोग-सम दुखु जग नाहीं॥

दो०—प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद-समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ, नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते॥

तन धनु धामु धरनि पुर राजू। पतिविहीन सबु सोकसमाजू॥
भोग रोगसम, भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल बिधु-बदनु निहारे॥

दो०—खग मृग परिजन नगर बनु बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन-सम परनसाल सुखमूल॥

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस-किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोजतुराई॥
कन्द मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत-सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु-वियोग-लव-लेस-समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर-अन्तर-जामी॥

दो०—राखिय अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहिं प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद सील-सनेह-निधान॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरनसरोज निहारी॥
सबहिं भाँति पिय-सेवा करिहौं। मारग-जनित सकल स्रम हरिहौं॥
पाय पखारि बैठि तरुछाहीं। करिहौं बाउ मुदित मन माहीं॥
स्रम-कन-सहित स्याम तनु देखे। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे॥
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥

नार-बार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभुसँग मोहि चितवनिहारा । सिंहबधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥

दो०–ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु-बिषम-बियोग-दुख सहिहहिं पाँवर प्रान ॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी । बचन बियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानु कुल नाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू । बेगि करहु बन-गवन-समाजू ॥
कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई । लगे मातुपद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजादुख मेटब आई । जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥
फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी । देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥
सुघरी सुदिन तात कब होइहि । जननी जिअत बदनबिधु जोइहि ॥

दो०–बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात ।
कबहि बोलाइ लगाइ हिय हरषि निरखिहौं गात ॥

लखि सनेह कातरि महतारी । बचन न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥
तब जानकी सासुपग लागी । सुनिय माय मैं परम अभागी ॥
सेवा-समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
तजब छोभु जनि छाँड़िअ छोहू । करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥
सुनि सियबचन सासु अकुलानी । दसा कवनि बिधि कहौं बखानी ॥
बारहि बार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग-जमुन-जल धारा॥

दो०—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पदपदुम सिर अति हित बारहिं बार॥

समाचार जब लछिमन पाये। व्याकुल बिलप-बदन उठि धाये॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अतिप्रेम-अधीरा॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े॥
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुखु सुकृतु सिरान हमारा॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा॥
राम बिलोकि बन्धु करजोरे। देह गेह सब सन तृनु तोरे॥
बोले बचनु राम नयनागर। सील-सनेह-सरल-सुख-सागर॥
तात प्रेमबस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥

दो०—मातु पिता गुरु-स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जाय॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥
भवन भरत रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं॥
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परै दुसह-दुख भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥
रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लषनु भये व्याकुल भारी॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥

दो०—उतरु न आवत प्रेमबस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं, स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नरबर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी॥
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मन्दरु मेरु कि लेहि मराला॥
गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीतिप्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अन्तर-जामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन-क्रम बचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयेउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥
हरषित हृदय मातु पहिं आये। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये॥
जाइ जननि पग नायेउ माथा। मनु रघुनन्दन जानकि-साथा॥
पूँछे मातु मलिन मुख देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग, बिधि, कहहि कि नाहीं॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृपसनेह लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम-निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानुप्रकासू ॥
जौं पै सीय-रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं ॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ-रहित सखा सब ही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवनु-लाहू ॥

दो०—भूरि भागभाजनु भयेहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाँडि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ ॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघु-पति-भगतु जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि, बादि बिआनी। रामबिमुख सुत तें हित-हानी ॥
तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड फल एहू। राम सीय-पद सहज सनेहू ॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करहु इहै उपदेसू ॥

सो०—मातुचरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भागबस ॥

स्फुट पद्य

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी-दास कहाइ ॥
बूझिहैं 'सो है कौन'? कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत रामकृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥
जानकि जगजननि जन की किए बचन-सहाइ।
तरै 'तुलसीदास' भव तव नाथ गुनगन गाइ ॥

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सबेरो ॥
बिछुरे ससि रबि मन! नयननि तें पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो।
'तुलसिदास' सब आस छाँड़ि-करि होहि राम कर चेरो ॥

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ-तहँ इंद्रिन तान्यो ॥
जदपि बिषय सँग सहे दुसह दुख बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस जानत हूँ नहिं जान्यो ॥

जनम अनेक किए नाना विधि करम-कीच चित सान्यो।
होइ न विमल विवेक-नीर बिनु बेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
'तुलसिदास' कब तृषा जाइ? सर खनतहि जनम सिरान्यो॥

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसकन की॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की॥
ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
'तुलसिदास' प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥

केसव कहि न जाइ का कहिए?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरै भीति दुख, पाइय यहि तनु हेरे॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
'तुलसिदास' परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥

माधव ! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहीं जब लगि करहु न दाया॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहीं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति सतावै॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जौ पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल रूप बिषय कारन निसि बासर धावै॥
जेहिके भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै।
सपने परबस पर्यौ जागि देखत केहि जाइ निहोरै?
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं।
'तुलसिदास' हरिकृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं॥

जो पै रहनि राम सो नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर से जाय जियत जग माहीं॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास, सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय-पी के॥
सूर, सुजान, सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरिभजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने।
'तुलसी' प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने॥

लाभ कहा मानुष तनु पाए।
काय, बचन, मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए॥
जौ सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बुलाए।

मीराँबाई

पद

(१)

बसो मोरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरति, साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
मोर-मुगट, मकराकृति कुंडल अरुण तिलक दिये भाल।
अधर-सुधा-रस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर-सबद रसाल।
'मीराँ' प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल गोपाल॥

(२)

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण॥
जिण चरण प्रहलाद परसे इन्द्र-पदवी धरण॥
जिण चरण ध्रुव अटल कीने राखि अपनी सरण॥
जिण चरण ब्रह्मांड भेंट्यो नख सिख सिरी धरण॥
जिण चरण प्रभु परसि लीने तरी गोतम घरण॥
जिण चरण कालीनाग नाथ्यो गोप-लीला-करण॥
जिण चरण गोबरधन धर्यो इन्द्र को ग्रब हरण॥
दासी 'मीराँ' लाल गिरधर अगम तारण तरण॥

(३)

भज मन चरण-कँवल अविनासी।
जेताइ दीसै धरण-गगन विच तेताइ सब उठ जासी।
इस देही का गरब न करणा माटी में मिल जासी॥
यो संसार चहर की बाजी साँझ पड्याँ उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीने कहा लिये करवत कासी?
कहा भयो है भगवा पहर्याँ घर तज भये सँन्यासी?
जोगी होइ जुगत नहिं जाणी उलट जनम फिर आसी।
अरज करौं अबला कर जोरें स्याम तुम्हारी दासी।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फाँसी॥

(४)

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुंदर बदन कमल दल लोचन बाँकी चितवन मँद मुसकानी।
जमना के नीरे तीरे धेन चरावै बंसी में गावै मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारूँ चरण कँवल 'मीराँ' लपटानी॥

(५)

माई री मैं तो लीयो गोविन्दो मोल।
कोई कहै छानै कोई कहै चौडे लियो री बजता ढोल।
कोई कहै मुँहघो कोई सुँहघो लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो लियो री अमोलक मोल।
या ही कूँ सब लोग जाणत है लियो री आँखी खोल।
'मीराँ' कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ पूरब जनम कौ कोल।

(११)

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे।
बिनि करताल पखावज बाजै अणहद की झणकार रे।
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै रोम-रोम रँग सार रे।
सील सतोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उडत गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं लोक-लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आये सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल बलिहार रे।



केशवदास

हनुमानजी का लंका-गमन

[दोहा]

उदधि नाकपति-शत्रु को, उदित जानि बलवंत।
अंतरिक्ष हीं लंघि पद, अच्छ छुयो हनुमंत॥ १॥
बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि॥ २॥

[तारक छंद]

कछु राति गये करि दश दशा सी।
पुर माँझ चले बनराजि विलासी॥
जब हीं हनुमंत चले तजि शंका।
मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका॥ ३॥

हनुमान-लंका संवाद

लंका—कहि मोहिं उलंघि चले तुम को हौ।
अति सूक्ष्म रूप धरे मन मोहौ॥
पठये क्यहि कारण कौन चले हौ।
सुर हौ किधौं कोऊ सुरेश भले हौ॥ ४॥
हनुमान—हम बानर हैं रघुनाथ पठाये।
तिनकी तरुणी अवलोकन आये॥
लंका—हति मोहिं महामति भीतर जैये।
हनुमान—तरुणीहिं हते बनलों सुख पैये॥ ५॥

लंका—तुम मारेहि वै पुर पैठन पैहौ।
हठ कोटि करौ घरहीं फिरि जैहौ॥
हनुमंत बली तेहि थापर मारी।
तजि देह भई तब ही वर नारी॥ ६॥

[चौपाई]

लंका—धनदपुरी हौं रावण लीन्हो।
बहु विधि पापन के रस भीनो॥
चतुरानन चित्त चिंतित कीन्हो।
वरु करुणा करि मोकहँ दीन्हो॥ ७॥
जब दशकंठ सिया हरि लैहैं।
हरि हनुमंत विलोकन ऐहैं॥
जब वह तोहि हतै तजि शंका।
तब प्रभु होइ विभीषण लंका॥ ८॥
चलन लगो जब ही तब कीजो।
मृतक शरीरहि पावक दीजो॥
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमंत निहारी॥ ९॥

रावण-शयनागार

तब हरि रावण सोवत देख्यो।
मणिमय पलका की छवि लेख्यो॥
तहँ तरुणी बहु भाँतिन गावैं।
विच-बिच आवझ बीन बजावैं॥ १०॥

मृतक चिता पर मानहु सोहैं।
चहुँ दिशि प्रेतवधू मन मोहैं॥
जहँ-जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय बिन है सिगरो घर सूनो॥ ११॥

[भुजगप्रयात छंद]

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावैं।
नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं॥ १२॥
पियैं एक हाला गुहैं एक माला।
बनी एक बाला नचैं चित्रशाला॥
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावै सुआ लै शुकी शारिका को॥ १३॥
फिर्‌यो देखिकै राजशाला सभा को।
रह्यो रीझिकै बाटिका की प्रभा को॥
फिर्‌यो और चौहूँ चित शुद्ध गीता।
बिलोकी भली सिंसिपा मूल सीता॥ १४॥

सीता-दर्शन

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सों काढि डारी॥
सदा रामनामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुखदानी॥ १५॥

असो बुद्धि-सी चित्त चिन्तानि मानो।
किधौं जीभ दन्तावली में बखानो॥
किधौं घेरिकै राहु नारीन लीनी।
कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी॥ १६॥
किधौं जीव की जोति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥
मनो सबर-स्रोन में काम-वामा।
हनूमान ऐसी लखी राम-रामा॥ १७॥
तहाँ देव-द्वेषी दशग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महादुःख छायो॥
सबै अंग लै अंग ही में दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥ १८॥

रावण-सीता-संवाद

रावण—सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै।
इतो शोच तो राम काजे न कीजै॥
बसैं दण्डकारण्य देखै न कोऊ।
जो देखै महाबावरो होय सोऊ॥ १९॥
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहिं चाहै।
हितू नग्न मुंडीन ही को सदा है॥
अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी।
बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी॥ २०॥

तुम्हैं देवि नृपै हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै॥
महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै॥ २१॥

अदेवी नृदेवीन की होहु रानी।
करैं सेव बानी मघौनी मृडानी॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेशी नचैं उर्वशी मान पावैं॥ २२॥

[मालिनी छंद]

सीता—तृण बिच दै बोली सीय गंभीर बानी।
दशमुख शठ को तू कौन की राजधानी॥
दशरथ-सुत-द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निशिचर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै॥ २३॥

अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल खर शर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी॥
बिडकन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै।
शिव शिर शशिश्री को राहु कैसे सो छीवै॥ २४॥

उठि उठि शठ ह्यां ते भागु तौलौं अभागे।
मम वचन बिसर्पी सर्प जौलों न जागे॥
विकल सकुल देखौं आसु ही नाश तेरो।
निदुट मृतक तोको रोष मारै न मेरो॥ २५॥

[दोहा]

अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राक्षसिन बोलि।
ज्यों समुझै समुझाइयो, युक्ति-छुरी सों छोलि ॥ २६ ॥

मुद्रिका-प्रदान

[चामर छंद]

देखि देखिकै अशोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहिं आगि तैं जो अग आगि ह्वै रह्यो ॥
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आस पास देखिकै उठाय हाथ कै लई ॥ २७ ॥

[तोमर छंद]

जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ ॥
यह कह्यो लखि तब ताहि। मणि-जटित मुँदरी आहि ॥२८॥
जब बाँचि देख्यो नाउ। मन परयो सभ्रम भाउ ॥
आनाल तें रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ ॥२९॥
बिछुरी सो कौन उपाउ। केहि आनियो यहि ठाउ ॥
सुधि लहौं कौन उपाउँ। अब काहि बूझन जाउँ ॥३०॥
चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियो आकास ॥
तहँ शाख बैठो नीठि। तब परयो वानर डीठि ॥३१॥

सीता-हनुमान सवाद

तब कह्यो को तू आहि। सुर असुर मोतन चाहि ॥
कै यक्ष पक्ष विरूप। दशकठ वानर रूप ॥

कहि आपनो तू भेद। न तु चित्त उपजत खेद॥
कहि वेगि बानर पाप। न तु तोहिं देहौं शाप॥
हरि वृक्ष शाखा भूमि। कपि उतरि आयो भूमि॥३२॥

[पद्धटिका छंद]

कर जोरि कह्यो हौं पवन पूत।
जिय जननि जानु रघुनाथ दूत॥
रघुनाथ कौन दशरत्थ नंद।
दशरत्थ कौन अज तनय चंद॥ ३३॥
केहि कारण पठये यहि निकेत।
निज देन लेन संदेश हेत॥
गुण रूप शील शोभा सुभाउ।
कछु रघुपति के लक्षण बताउ॥ ३४॥
अति यदपि सुमित्रा नंद भक्त।
अति सेवक है अति शूर शक्त॥
अरु यदपि अनुज तीन्यो समान॥
पै तदपि भरत भावत निदान॥ ३५॥
ज्यों नारायण-उर श्री बसति।
त्यों रघुपति उर कछु द्युति लसति॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप॥
सुर असुर न पूजैं राम रूप॥ ३६॥

[निशिपालिका छंद]

सीता—मोहि परतीति यहि भाँति नहिं आवई।

प्रीति कहि धों सुनर वानरनि क्यों भई ॥
बात सब वर्णि परतीति हरि त्यों दई।
आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥ ३७ ॥

[दोहा]

आँसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरणति है बहु भाइ ॥ ३८ ॥

मुद्रिका-वर्णन

[पद्धटिका छंद]

यह सूरकिरण तम दुःखहारि।
शशिकला किधौं उर शीतकारि ॥
कल कीरति सी शुभ सहित नाम।
कै राज्यश्री यह तजी राम ॥ ३९ ॥
कै नारायण उर सम लसति।
शुभ अकन ऊपर श्री बसति ॥
बर विद्या-सी आनद-दानि।
युत अष्टापद मनु शिवा मानि ॥ ४० ॥
जनु माया अच्छर सहित देखि।
कै पत्री निश्चयदानि लेखि ॥
प्रिय प्रतीहारनी-सी निहारि।
श्रीरामो - जय उच्चारकारि ॥ ४१ ॥

प्रिय पठई मानो सखि सुजान।
जगभूषण को भूषण निधान॥
निजु आई हमको सीख देन।
यह किधों हमारो मरम लेन॥ ४२॥

[दोहा]

सुखदा शिखदा अर्थदा, यशदा रसदातारि।
रामचद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि॥ ४३॥
यहु बरणा सहज प्रिया, तम गुनहरा प्रमान।
जग मारग दरशावनी, सूरज किरण-समान॥ ४४॥
श्रीपुर मे वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करि है परतीति॥ ४५॥

[पद्धटिका छद]

कहि कुशल मुद्रिके रामगात।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात॥
यह उत्तर देति न बुद्धिवत।
केहि कारण धों हनुमत सत॥ ४६॥

[दोहा]

सान—तुम पूँछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम।
कन की पदवी दई, तुम-बिन याक्हँ राम॥ ४७॥

एक रक मारि क्यों वडो कलक लीजई।
बूँद सोखिगो कहा महासमुद्र छीजई॥ ५८॥

तूल तेल बोरि-बोरि जोरि-जोरि वाससी।
लै अपार रार ऊन दून सूत सों कसी॥
पूछ पौनपूत की सँवारि वारि दी जहीं।
अग को घटाइकै उडाइ जात भो तहीं॥ ५९॥

[चचरी छद]

धाम धामनि आगि की वहु ज्वाल-माल विराजहीं।
पौन के झकझोर से झँझरी झरोखन भ्राजहीं॥
वाजि वारण शारिका शुक मोर जोरन भाजहीं।
छुद्र ज्यों विपदाहि आवत छोडि जात न लाजहीं॥ ६०॥

लंका-दाह

[भुजगप्रयात छद]

जटी अग्निज्वाला अटा सेत हैं ज्यों।
शरत्काल के मेघ सध्या समै ज्यों॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं।
मनो स्वर्ण की किंकिणी नाग साजैं॥ ६१॥
कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढे।
मनो ईश रोपाग्नि में काम डाढे॥

कहूँ कामिनी ज्वाल-मालानि भोरें।
तजैं लाल सारी अलंकार तोरें ॥ ६२ ॥
कहूँ भौन रात्रे रचै धूम छाहीं।
शशी सूर मानों लसैं मेघ माहीं ॥
जरैं शस्त्रशाला मिली गंधमाला।
मलै अद्रि मानौ लगी दाव ज्वाला ॥ ६३ ॥
चली भागि चौहूँ दिशा राजरानी।
मिली ज्वाल-माला फिरै दु:खदानी ॥
मनो ईश बानावली लाल लोलैं।
सबै दैत्यजायान के संग डोलैं ॥ ६४ ॥

[सवैया]

लंक लगाइ दई हनुमंत विमान बचे अति उच्चरुची है।
पावक मे उचटैं बहुधा मनि रानी रटैं पानी पानी दुखी है ॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी है।
गंग हजारमुखी गुनि 'केशो' गिरा मिली मानौ अपारमुखी है ॥६५॥

[दोहा]

हनुमंत लाइ लंक सब, बच्यो विभीषण धाम।
ज्यों अरुणोदय बेर में, पंकज पूरब याम ॥६६॥

[संयुता छंद]

हनुमंत लंक लगाइकै। पुनि पूँछ सिंधु बुझाइकै ॥
शुभ देख सीतहि पाँ परे। मनि पाय आनँद जी भरे ॥६७॥

रघुनाथ पै जब ही गये। उठि अक लावन को भये ॥
प्रभु मैं कहा करणी करी। शिर पाय की धरणी धरी ॥६८॥

[दोहा]

चिंतामणि सी मणि दई, रघुपति कर हनुमत।
सीताजू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनत ॥६९॥

सीता-संदेश

[घनाक्षरी]

भौंरनी ज्यों भ्रमति रहति वन-वीथिकानि,
हंसिनी ज्यो मृदुल मृणालिका चहति है।
हरिणी ज्यों हेरति न केशरी के काननहिं,
केका सुनि व्याली ज्यों बिलानहीं चहति है।
पीउ-पीउ रटत रहति चित चातकी ज्यों,
चद चितै चकई ज्यो चुप है रहति है।
सुनहु नृपति राम विरह तिहारे ऐसी,
सूरतिन सीताजू की मूरति गहति है ॥ ७० ॥

[दोहा]

श्रीनृसिंह प्रह्लाद की, वेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आशु ही, झूँठी ह्वैहै नाथ ॥ ७१ ॥

[दडक]

राम—साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुख हरि,
और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ।

वानर नहीं हौ तुम मेरे बाण रोप सम,
बलीमुख शूर बली मुख निजु गाये हौ।
शाखामृग नाही बुद्धि बलन के शाखा मृग,
कैधौं वेद शाखामृग 'केशव' को भाये हौ।
साधु हनुमंत बलवंत यशवंत तुम,
गये एक काज को अनेक करि आये हौ ॥ ७२ ॥

[तोमर छंद]

हनुमान—गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहिं ल्याई वार ॥
कह करयो मैं बलरंक। अतिमृतक जारी लंक ॥ ७३ ॥



रसखान

प्रेमवाटिका

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥ १ ॥
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर-सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नहिं 'रसखान' ॥ २ ॥
प्रेम-बारुनी छानिकै, बरुन भए जलधीस।
प्रेमहिं तें विष-पान करि, पूजे जात गिरीस ॥ ३ ॥
प्रेमरूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।
यामें अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमोल ॥ ४ ॥
कमलतंतु सों छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार ॥ ५ ॥
लोक-वेद-मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बहाए प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह ॥ ६ ॥
कबहुँ न जा पथ भ्रम-तिमिर, रहै सदा सुखचंद।
दिन दिन बाढ़त ही रहै, होत कबहुँ नहिं मंद ॥ ७ ॥
भले बृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किए उपाय ॥ ८ ॥
श्रुति पुरान आगम स्मृतिहि, प्रेम सबहिं को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम-बीज अँकुवार ॥ ९ ॥

ज्ञान, कर्मऽरु उपासना, सब अहमिति को मूल।
दृढ निश्चय नहिं होत विन, किए प्रेम अनुकूल ॥ १० ॥
शास्त्रन पढि पंडित भए, कै मौलवी कुरान।
जुपै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो 'रसखान' ॥ ११ ॥
काम क्रोध मद मोह भय, लोभ द्रोह मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥ १२ ॥
बिनु गुन जोबन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध, कामना तें रहित, प्रेम सकल-रस-खानि ॥ १३ ॥
अति सूछम कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सबतें सदा, नित इकरस भरपूर ॥ १४ ॥
जग में सब जान्यौ परै, अरु सब कहै कहाय।
पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥ १५ ॥
जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं, जान्यो जात बिसेस।
सोइ प्रेम, जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेस ॥ १६ ॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ-कथा सबिसेह ॥ १७ ॥
इकअंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥ १८ ॥
डरैं सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहिकै, प्रेम बखानो सोय ॥ १९ ॥
प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥ २० ॥

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेमसरूप।
एक होइ द्वै यो लसैं, ज्यौं सूरज अरु धूप॥ २१॥
ज्ञान ध्यान विद्या मती, मत विश्वास विवेक।
बिना प्रेम सब धूर है, अग जग एक अनेक॥ २२॥
प्रेम-फाँस में फँसि मरै, सोई जिए सदाहिं।
प्रेममरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं॥ २३॥
जग में सबतें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहूँ तें अधिक, प्यारो प्रेम कहाय॥ २४॥
जेहि पाए बैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि॥ २५॥
कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा भाला तीर कोउ—कहत अनोखी ढार॥ २६॥
पै मिठास या मार के, रोम रोम भरपूर।
मरत जियै झुकवो थिरै, बनै सु चकनाचूर॥ २७॥
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम - आधीन।
याही तें हरि आपुही, याहि बड़प्पन दीन॥ २८॥
वेद-मूल सब धर्म यह, कहै सबै श्रुतिसार।
परमधर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार॥ २९॥
जदपि जसोदानंद अरु, ग्वालबाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम को, गोपी भई अनन्य॥ ३०॥
श्रवन कीरतन दरसनहिं, जो उपजत सोइ प्रेम।
शुद्धाशुद्ध विभेद तें, द्वैविध ताके नेम॥ ३१॥

स्वारथ-मूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभावऽनुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल॥ ३०॥
रसमय स्वाभाविक बिना-स्वारथ अचल महान।
सदा एकरस शुद्ध सोइ, प्रेम अहै 'रसखान'॥ ३२॥

स्फुट पद्य

(१)

मानुष हौं तो वहीं 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन सौं ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक करौ कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

(३)

गावैं गुनी गनिका गंधर्व औ सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥

(४)

धूर भरे अति शोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजती पीरी कछोटी॥
वा छवि को 'रसखानि' विलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥

(५)

कल कानन कुडल मोरपखा उर पैं बनमाल बिराजति है।
मुरली कर में अधरा मुसकानि तरग महाछवि छाजति है॥
'रसखानि' लखै तन पीत पटा सत दामिनी की दुति लाजति है।
वह बाँसुरी की धुनि कान परें कुलकानि हियो तजि भाजति है॥

(६)

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितू वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्‌यो 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुंजकुटीर में बैठो पलोटत राधिका-पायन॥

(७)

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनत अखड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

(८)

मकराकृत कुंडल गुंज की माल वे लाल लसैं पग पाँवरिया।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयो भावती भाँवरिया॥
'रसखानि' बिलोकत ही सिगरी भईं बावरिया ब्रज डाँवरिया।
सजनी इहिं गोकुल मैं विष सो बगरायो है नंद के साँवरिया॥

(९)

मो मन मोहन कों मिलिकै सबहीं मुसकानि दिखाय दई।
वह मोहनी मूरति रूपमयी सबही चितई तब हौं चितई॥
उन तौ अपने अपने घर की 'रसखानि' भली बिधि राह लई।
कछु मोहि को पाप पर्‍यो पल में पग पावत पौरि पहार भई॥

(१०)

छीर जो चाहत चीर गहैं ए जु लेहु न केतक छीर अचैहौ।
चाखन के मिस माखन माँगत खाहु न माखन केतिक खैहौ॥
जानत हौं जिय की 'रसखानि' सु काहे को एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नैकु न पैहौ॥

(११)

प्रान वही जु रहैं रिझि वापर रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो री वाही दही सु सही जो वही ढरकायो।
और कहाँ लौं कहौं 'रसखानि' री भाव वही जु वही मनभायो॥

(१२)

सपति सों सकुचाइ कुबेरहिं रूप सों दीनी चिनौती अनगहिं।
भोग कै कै ललचाइ पुरदर जोग कै गग कै लइ धरि मगहिं॥
ऐसे भये तो कहा 'रसखानि' रसै रसना जो जु मुक्ति तरगहिं।
दै चित ताके न रग रच्यौ जु रह्यो रचि राधिका रानी के रगहिं॥

(१३)

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी प्रहलाद को कैसे हर्‍यो दुख भारो॥
काहे कों सोच करै 'रसखानि' कहा करिहैं रविनद बिचारो।
ता खन जा खन राखिए माखन चाखनहारो सो राखनहारो॥

(१४)

यह देख धतूरे के पात चबात औ गात सों धूली लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अँटकैं लटकैं फनि सों फनी फहरावत हैं॥
'रसखानि' जेई चितवै चित दै तिनके दुख दुद भजावत हैं।
गजखाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत हैं॥

(१५)

कहा 'रसखानि' सुखसपति सुमार कहा
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अग छार को।
कहा साधे पचानल कहा सोए बीच नल
कहा जीत लाए राज सिंधु आर पार को॥

जप वार वार तप मजय वयार व्रत
तीरथ हजार अरे बूझत लवार को।
कीन्हो नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित
चाह्यो न निहारो जो पै नंद के कुमार को॥

(१६)

कंचन के मंदिरनि दीठ ठहरात नाहिं
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सौं।
और प्रभुताई अब कहाँ लौं बखानौं प्रति-
हारन की भीर भूप टरत न द्वारे सों॥
गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ वेद
बीस बार गाइ ध्यान कीजत सवारे सौं।
ऐसे ही भए तो नर कहा 'रसखानि' जो पै
चित दे न कीनी प्रीत पीतपटवारे सों॥



बिहारीलाल

दोहे

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित दुति होइ ॥ १ ॥
नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन बिरदु बारक बारनु तारि ॥ २ ॥
जम-करि मुँह तरहरि परयो इहि धरहरि चित लाउ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ॥ ३ ॥
दीरघ साँस न लेहि दुख सुख साईंहि न भूलि।
दई दई क्यों करतु है दई दई सु कबूलि ॥ ४ ॥
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहि कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥ ५ ॥
जपमाला छापा तिलक सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै वृथा साँचै राँचै रामु ॥ ६ ॥
बड़े न हूजे गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु गहनौ गढ्यो न जाइ ॥ ७ ॥
कनकु कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ।
उहिं खाँए बौराइ इहिं पाए हीं बौराइ ॥ ८ ॥
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि, रही गुलाब में अपत कँटीली डार ॥ ९ ॥

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ बिहारीलाल॥ १०॥
नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जाइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै तेतौ ऊँचौ जाइ॥ ११॥
बढ़त बढ़त संपति सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत-घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ॥ १२॥
अति अगाधु अति औथरौ नदी कूपु सरु बाइ।
सो ताकौ सागरु जहाँ जाकी प्यास बुझाइ॥ १३॥
अधर धरत हरि कैं परत ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष रँग होति॥ १४॥
को कहि सकै बड़ेनु सौं लखैं बड़ी यौ भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल॥ १५॥
समै समै सुंदर सबै रूपु कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ॥ १६॥
या भव-पारावार कौं उलँघि पार को जाइ।
तिय-छबि-छाया ग्राहिनी ग्रहै बीच हीं आइ॥ १७॥
इहीं आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वैहैं फेरि बसंत ऋतु इन डारनु वे फूल॥ १८॥
कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोबन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ॥ १९॥
नीच हियैं हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत।
ज्यों ज्यों माथे मारियत त्यों त्यों ऊँचे होत॥ २०॥

बुरौ बुराई जौ तजै तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु ॥ २१ ॥
ओछे बडे न ह्वै सकैं लगौ सतरौंहे गौन। बैन
दीरघ होहि न नैंक हूँ फारि निहारैं नैन ॥ २२ ॥
कर लै सूँघि सराहि हूँ रहे सबै गहि मौनु।
गंधी, गंध गुलाब कौ गँवई गाहकु कौनु ॥ २३ ॥
इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाहिं।
देखैं बनै न देखतै अनदेखैं अकुलाहिं ॥ २४ ॥
को छूट्यो इहिं जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत त्यौं त्यौं उरझत जात ॥ २५ ॥
चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के वीर ॥ २६ ॥
ज्यौं ह्वैहौं त्यौं होउँगौ हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है मो तारिबौ गोपाल ॥ २७ ॥



भूषण

काली कपर्दिनी

जै जयति, जै आदि सकति, जै कालि कपर्दिनि,
जै मधुकैटभ-छलनि, देनि, जै महिष-बिमर्दिनि।
जै चमुंड जै चंड - मुंड - भंडासुर - खंडिनि,
जै सुरक्त जै रक्तबीज - बिड्डाल बिहंडिनि।
जै-जै निसुंभ सुंभद्दलनि, भनि 'भूषन' जै जै भननि,
सरजा समत्थ सिवराज कहँ, देहि बिजै, जै जग-जननि॥

छत्रसाल की तलवार

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलैभानु कीसी,
फारैं तमतोम से गयन्दन के जाल को।
लागति लपटि कँठ बैरिन के नागिनी-सी,
रुद्रहिं रिझावै दै दै मुंडन की माल को॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देती काल को॥

शिवाजी की प्रशंसा

(१)

इन्द्र जिमि जंभ पर, वाडव सु अंभ पर,
रावण सदंभ पर रघुकुल-राज है।
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाह पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम-दंड पर, चीता मृग-झुंड पर,
'भूषन' वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥

(२)

एक कहैं कलपद्रुम है, इमि पूरत है सबकी चित-चाहै,
एक कहैं अवतार मनोज को, यों तन में अति सुंदरता है।
'भूषन' एक कहैं महि-इंदु यों, राज बिराजत बाढ्यो महा है,
एक कहैं नरसिंह है संगर, एक कहैं नरसिंह सिवा है॥

(३)

तो कर सों छिति छाजत दान है, दानहू सों अति तो कर छाजै।
तैं ही गुनी की बडाई सजै, अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै॥
'भूषन' तोहि सों राज बिराजत, राज सों तू सिवराज, बिराजै।
तो बल सों गढ-कोट गजैं, अरु तू गढ कोटन के बल गाजै॥

(४)

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र अरु
इंद्र को अनुज हेरैं दुगधि-नदीस को।
'भूषन' भनत सुरसरिता को हंस हेरैं
विधि हेरै हंस को चकोर रजनीस को॥
साहि-तनै सिवराज करनी करी है तैं जु
होत है अचंभो देव कोटियो तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस में हिराने निज
गिरि को गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस को॥

(५)

चित्त अनचैन, आँसू उमगत नैन, देखि
बीबी कहै बैन, मियाँ, कहियत काहिनै?
'भूषन' भनत बूझे आए दरबार तें
कँपत बार-बार क्यों सँभार तन नाहिनै?
सीनो धकधकत, पसीनो आयो देह सब
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ-दाहिनै।
सिवाजी की संक मानि गए हौ सुखाय, तुम्हैं
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहिनै।

(६)

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।

'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गब्बरन के रलत है॥
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।
तारा-सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

(७)

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ।
'भूषन' भनत तिहुँ लोक में तिहारी धाक,
दिल्ली औ बिलाइति सकल बिललानियाँ॥
आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन छ्वै,
बाँधती न बारन, मुखन कुम्हिलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं,
बीबी गहैं सूथनी सु नीबी गहे रानियाँ॥

(८)

केतिक देस दल्यौ दल के बल, दच्छिन चंगुल चापिकै चाख्यो।
रूप-गुमान हर्‌यो गुजरात को, सूरति को रस चूसिकै नाख्यो॥
पंजन पेलि मलिच्छ मल्यौ सब, सोइ बच्यो, जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रँग है सिवराज बली, जेहि नौरँग में रँग एक न राख्यो॥

(९)

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह ग्वरकति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपूर-पति,
फिरत फिरंगिन की नारीं फरकति है॥
थरथर काँपत कुतुबसाहि गोलकुँडा,
हहरि हबस-भूप भीर भरकति है॥
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है॥

(१०)

बेद राखे बिदित पुरान राखे सारजुत,
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखि है सिपाहिन की,
काँधे में जनेउ राख्यो, माला राखी गर में॥
मीडि राखे मुगुल, मरोरि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे, बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घर में॥



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

गंगा-गरिमा

नव उज्जल जलधार, हार हीरक-सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पैं इक इमि आवत।
जिमि नर गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभ-स्वर्ग-सोपान-सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरिपद-नख-चन्द्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमंडल-मंडन, भव-खंडन सुर-सरबस॥
शिव सिर-मालति-माल, भगीरथ-नृपति-पुन्य-फल।
ऐरावत-गज गिरि-पति-हिम-नग-कंठहार कल॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।
अगिनित धारा रूप धारि सागर संचारन॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हू नहिं तजी, रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढी, बढी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥

मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढत कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुदरी नहात बारि कर-जुगल उछारत।
जुग अबुज मिलि मुक्तगुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुदरि बदन करन अति ही छवि पावत।
बारिधि नाते ससि कलक मनु कमल मिटावत॥
सुदरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुदर सोहत।
कमलबेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहाँ जहँ जात रहत तितही ठहराई।
गगा छवि 'हरिचद' कछू बरनी नहिं जाई॥

पावस-मसान

चपला की चमक चहूँघा सों लगाई चिता
चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है।
हेती बगमाल स्याम बादर सु भूमि कारी
बीरबधू लहू-बूँद भुव लपटायो है॥
'हरीचद' नीर धार आँसू-सी परत जहाँ
दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है।
दाहन बियोग दुखियान को मरे हूँ यह
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

नारद की वीणा

(१)

पिंग जटा को भार सीस पै सुंदर सोहत।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत॥
कटि मृगपति को चरम चरन मे घुँघरू धारत।
नारायण गोविंद कृष्ण यह नाम उचारत॥
लै बीना कर बादन करत तान सात सुर सो भरत।
जग अघ छिन में हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भवजल तरत॥

(२)

जुग तूँबन की बीन परम सोभित मनभाई।
लय अरु सुर की मनहुँ जुगल गठरी लटकाई॥
आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहैं।
कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग-मन मोहैं॥
कै श्रीराधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट।
यह अगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो हूँ अघट॥

(३)

मनु तीरथमय कृष्णचरित की काँवरि लीने।
कै भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने॥
जग वुधि तौलन हेत मनहुँ यह तुला बनाई।
भक्ति-मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई॥
मनु गावन सों श्रीराग के बीना हू फलती भई।
कै राग सिंधु के तरन हित, यह दोऊ तूँबी लई॥

(४)

ब्रह्म-जीव, निरगुन-सगुन, द्वैताद्वैत विचार।
नित्य अनित्य विवाद के, द्वै तूँबा निरधार॥
जो इक तूँबा लै कढै, सो बैरागी होय।
क्यों नहि ये सबसों बढैं, लै तूँबा कर दोय॥

वह छबि

नैना वह छबि नाहिंन भूले।
दया-भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले॥
वह आवनि वह हँसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरैं।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुँ कोरैं॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परबस भए फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे।
हरि-ससि मुख ऐसी छबि निरखत तन मन धन सब हारे॥

यमुना-वर्णन

(१)

तरनि-तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन-हित मनहुँ सुहाए॥

किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप वारन तीर कों सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥

(२)

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहूँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा॥
कै करिकै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥

(३)

कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृगन मिस अस्तुति उच्चारत॥
कै ब्रज तियगन-वदन-कमल की झलकत झाईं।
कै ब्रज हरिपद-परस हेत कमला बहु आईं॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥

(४)

तिनपैं जेहि छिन चन्द-जोति राका निसि आवति।
जल में मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति॥

होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ावत देखि सुंदर सो सोभा॥
सो को कबि जो छबि कहि सकै ता छन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अंबर रहत छबि इक-सी नभ-तीर की॥

(५)

परत चंद्र-प्रतिबिंब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो॥
कै रास-रमन में हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि मूरति बसत, ता-प्रतिबिंब लखात है॥

(६)

कबहुँ होत सत चंद कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिंब रूप जल में बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥
कै बालगुडी नभ में उडी सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज-रमनी जल आवती॥

(७)

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अबिकल॥

कै कालिंदी नीर तरंग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार-जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत॥

(८)

कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जल-कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ वसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक-पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर विविध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत॥

(९)

कहुँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत, रजत सीढ़ि मनु सरस सुहाई॥
पियके आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाए।
रतन-रासि करि चूर कूल में मनु बगराए॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी, स्यामनीर चिकुरन परसि।
सतगुन छायो कै तीर में, व्रज निवास लखि हिय हरसि॥

प्रेम-महिमा

सब मिलि गाओ प्रेमबधाई।
यह ससार रतन इक प्रेमहिं और बादि चतुराई॥
प्रेम बिना फीकी सब बातैं कहहु न लाख बनाई।
जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई॥
हाव भाव रस रग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई।
बिना लोंन बिंजन सो सब ही प्रेम-रहित दुरसाई॥
प्रेमहि सो हरि हू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई।
तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई॥



श्रीधर पाठक

काश्मीर-सुखमा

धनि धनि श्रीकश्मीर-धरनि मन-हरनि सुहावनि,
धनि कश्यप-जस-धुजा, विश्वमोहिनि मनभावनि।
धन्य आर्य-कुल-धर्म-पर्म-प्राचीन-पीठ-थल,
धन्य सारदा-सदनि अवनि, त्रैलोक्य-पुन्य-फल।
धन्य पुरातन प्रथित धाम, अभिराम अतुल-छवि,
स्वर्ग-सहोदरि धरनि, बरनि हारे कोविद कवि॥

धन्य यहाँ की धूलि, धन्य नीरद, नभ, तारे,
धन्य धवल हिमशृंग, तुङ्ग दुर्गम दृग-प्यारे।
धन्य नदी नद-स्रोत, विमल गर्गोद्-गोत जल,
सीतल सुखद समीर, वितस्ता-तीर स्वच्छ-थल।
धनि उपवन, उद्यान, सुमन-सुरभित वनवीथी,
लिखि रहीं चित्र विचित्र, प्रकृति के हाथलु चीती।
धन्य सुथर गिरिचरन सरित-निर्झर-रव-पूरित,
लघु दीरघ तरु विहग-वीन, कोकिल कल कूजित।
मृदुल दूब-दल-रचित कुसुम-भूषित सुचि शाद्वल,
ललित-लतावलि-वलित कलित कमनीय सलिल-थल।
धनि सुखमा-सुख-मूल सरित-सर-कूल मनोहर,
धनि सागर-सम-तूल विमल विस्तृत 'डल वूलर'।

मानसरोवर-मान-हरन सुन्दर 'मानस वल',
घनि 'गधर वल,' 'गगरी वल,' श्रीनगर स्वच्छ 'डल'।
एक एक सों सुघर अनेक सरोवर छाए,
प्रकृति देव निज रूप-लखन मनु मुकुर लगाए॥

धन्य नगर श्रीनगर वितस्ता-कूलनि सोहै,
पुलिन भौन प्रतिबिम्ब सलिल सोभा मन मोहै।
लसत 'कदल' पुल सात, चपरा नौकागन डोलैं,
रूपरासि नर-नारि वारि बिच करत कलोलैं।
धन्य राजप्रिय प्रजा, प्रजाप्रिय राज सुखारी,
घनि पुनीत नृपनीति प्रीतिपथ-पोषनहारी।
यवन आर्य बिच न्याय-मध्य कछु भेद न दीसत,
सोवत सुख की नींद सबै निज-नृपहि असीसत।
धन्य भिन्न मत प्रजा मध्य यह भेद-अभावा,
विमल न्याय, नय, सुमति, सीरा, वल, बुद्धि प्रभावा॥

प्रकृति यहाँ एकान्त वैठि निज रूप सँवारति,
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति।
विमल-अम्बु सर मुकुरन महँ मुख-बिंब निहारति,
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति।
सजति सजावति सरसति हरसति दरसति प्यारी,
वहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी।
विहरति विविध विलास-भरी जोवन के मद सनि
ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनि ठनि।

मधुर मञ्जु छवि पुञ्ज छटा छिरकति वन कुंजन,
चितवति रिझवति हसति डसति मुसिक्याति हरति मन ॥

यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भाँतिन,
सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन।
पूरन करिबे काज कामना अपने मन की
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की।
चहुँ दिसि हिम गिरि-सिखर हीर-मनि मौलि-अवलि मनु
स्रवत मरित-सित-धार द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु।
फल फूलन छवि छटा छई जो वन उपवन की,
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की।
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छवि,
छई मडलाकार, रही चारहुं दिसि यों फवि।
मानहुँ मनिमय मौलि-माल-आकृति अलबेली,
बाँधी निधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली।
अर्द्धचन्द्र सम सिखर-स्रैनि कहुँ यों छवि छाई,
मानहुं चन्दन-खौरि गौरि-गुरु खौरि लगाई।
पुनि तिन स्रैनिन बीच वितस्ता रेख जु राजति,
वैष्णव "श्री" अरु शिव-त्रिशूल की आभा भ्राजति ॥

हिम स्रैनिन सों घिर्‌यो अद्रिमडल यह रूरौ,
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख-पूरौ।
बहु विधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छायौ,

रतन निधि नैसर्ग मनहु विधि दुर्ग बनायौ।
अथवा विमल नटोर विश्व की निखिल निकाई,
गुम राखिबे काज सुदृढ़ संदूक बनाई।
कै यह जादूभरी विश्व-बाजीगर-थैली,
खेलत मे खुलि परी शैल के सिर पे फैली।।

सुरपुर अरु सुरकानन की सुठि सुन्दरताई,
त्रिभुवन मोहन-करनि कविनु बहु बरनि सुनाई।
सो सब कानन सुनी, किन्तु नैनन नहीं देखी,
जहँ तहँ पोथिन पढी पैसु परतच्छ न पेखी।
सो कवियन जो कही कलित सुरलोक निकाई,
याही को अवलोकि एक कल्पना बनाई।।

सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर,
को सोभा कौ भौन रूप को कौन समुन्दर?
काकौं उपमा उचित दैन दोउन में काकी,
याकी सुरपुर की अथवा सुरपुर कौं याकी?
याकौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै,
या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै।
यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुंदर,
यहि अमरन कौ ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर।।

सो 'श्रीधर'-मग बसी प्रेम अम्बुद-रस-दैनी,
पुन्यअवनि सुखसवनि अलौकिक-सोभा-सैनी।

पैसु यथारथ महिमा नहिं मोहि शक्ति वरानन,
सहसा नहिं कहि सकहिं रुकहिं सहसन सहसानन।
कविगन कौं कल्पना कल्प-तरु, काम धैनु-सी,
मुनियन कौं तपधाम, ब्रह्म-आनद-ऐनु-सी।
रसिकन कौं रसथान, प्रान, सर्वस, जीवन, धन,
प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीडा-कलोल-वन।
ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै,
मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै॥

कायर

जो जग के सब कार्य स्वार्थ के गज से नापै,
सबमें निज-सम सदा स्वार्थ-परता ही भाँपै
पर हित की चर्चा पर भी डर करके काँपै,
वहाँ कभी ना जाय भद्रजन जुड़ें जहाँ पै
हा! ऐसे कायर से भला क्या कोई पुरुषार्थ हो,
हों ऐसे सब जिस जाति में वह किस भाँति कृतार्थ हो

हिमालय

उत्तर दिसि नगराज अटल-छवि-सहित विराजत
लसत स्वेत सिर मुकुट, कनक-हिम-सोभा भ्राजत।
वदन देस सविसेस कनक-आमा आभासत
अधोभाग की स्याम-वरन छवि हृदय हुलासत॥ १

स्वेत-पीत सँग स्याम धार अनुगत सम अन्तर
सोहत त्रिगुन त्रिदेव त्रिजग प्रतिभास निरन्तर।
त्रिलसत सो तिहुँ काल त्रिविध सुठि रेख अनूपम
भारतवर्ष-त्रिशाल-भाल-भूषित त्रिपुण्ड्र सम ॥ २ ॥

उज्ज्वल ऊँचे सिखर दूर देसन लौं चमकत
परत भानु-नव किरन प्रात, सुवरन सम दमकत।
लता पुहुप नव राजि सदा ऋतुराज सुहावत
हरी-भरी, डहडही वृच्छ माला मन भावत ॥ ३ ॥

कोकिल-कीर कदम्ब-अम्ब चढि गान सुनावत
स्यामा चारु सुगीत मधुर सुर पुनि-पुनि गावत।
कहुँ हारीत कपोत, कहूँ मैना लखि परियत
कहुँ कहुँ खेचर-वर चकोर के दरसन करियत ॥ ४ ॥

देवदार की डार कहूँ लगूर हिलावत
कहुँ मरकट को कटक वेग सों तरु-तरु धावत।
विकसित नित नव कुसुम तरुन, नव मुकुलित मौरत
अलबेले अलिवृन्द कलिन के ढिग-ढिग भौंरत ॥ ५ ॥

झरना जहँ-तहँ झरत, करत कल छर छर जल रव,
पियत जीव सो अबु अमृत-उपमा हिम-सम्भव।
पवन सीत अति सुखद बुझावत बहु विधि तापा
बादर दरसत, परसत, बरसत आपहि आपा ॥ ६ ॥

पैसु यथारथ महिमा नहिं मोहि शक्ति वरानन,
सहसा नहिं कहि सकहिं रुकहिं सहसन सहसानन।
कविगन कौं कल्पना कल्प-तरु, काम धेनु-सी,
मुनियन कौं तपधाम, ब्रह्म-आनद-ऐनु-सी।
रसिकन कौं रसथान, प्रान, सर्वस, जीवन, धन,
प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीडा-कलोल-घन।
ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै,
मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै॥

कायर

जो जग के सब कार्य स्वार्थ के गज से नापै,
सबमें निज-सम सदा स्वार्थ-परता ही भाँपै।
पर हित की चर्चा पर भी डर करके काँपै,
वहाँ कभी ना जाय भद्रजन जुड़ैं जहाँ पै।
हा! ऐसे कायर से भला क्या कोई पुरुषार्थ हो,
हों ऐसे सब जिस जाति में वह किस भाँति कृतार्थ हो॥

हिमालय

उत्तर दिसि नगराज अटल-छवि-सहित बिराजत
लसत स्वेत सिर मुकुट, कनक-हिम-सोभा भ्राजत।
बदन देस सनिसेस कनक-आभा आभासत
अधोभाग की स्याम-बरन छवि हृदय हुलासत॥१॥

स्वेत-पीत सँग स्याम धार अनुगत सम अन्तर
सोहत त्रिगुन त्रिदेव त्रिजग प्रतिभास निरन्तर।
त्रिलसत सो तिहुँ काल त्रिविध सुठि रेख अनूपम
भारतवर्ष-विशाल-भाल-भूषित त्रिपुण्ड्र सम ॥ २ ॥

उज्ज्वल ऊँचे सिखर दूर देसन लौं चमकत
परत भानु नव-किरन प्रात, सुवरन सम दमकत।
लता पुहुप वन राजि सदा ऋतुराज सुहावत
हरी-भरी, डहडही वृच्छ माला मन भावत ॥ ३ ॥

कोकिल-कीर कदंब-अंब चढ़ि गान सुनावत
स्यामा चारु सुगीत मधुर-सुर पुनि-पुनि गावत।
कहुँ हारीत कपोत, कहूँ मैना लखि परियत
कहुँ कहुँ खेचर-वर चकोर के दरसन करियत ॥ ४ ॥

देवदार की डार कहूँ लगूर हिलावत
कहुँ मरकट को कटक वेग सों तरु-तरु धावत।
विकसित नित नव कुसुम तरुन, तरु मुकुलित बौरत
अलबेले अलिवृन्द कलिन के ढिग-ढिग झौरत ॥ ५ ॥

झरना जहँ-तहँ झरत, करत कल छर छर जल रव,
पियत जीव सो अनु अमृत-उपमा हिम-संभव।
पवन सीत अति सुखद बुझावत बहु विधि तापा
बादर दरसत, परसत, बरसत आपहि आपा ॥ ६ ॥

पेखु यथारथ महिमा नहिं मोहि शक्ति वरानन,
सहसा नहिं कहि सकहिं रुकहिं सहसन सहसानन।
कविगन कौं कल्पना कल्प-तरु, काम धेनु-सी,
मुनियन कौं तपधाम, ब्रह्म-आनंद-ऐनु-सी।
रसिकन कौं रमथान, प्रान, सर्वस, जीवन, धन,
प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीडा-कलोल-वन।
ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै,
मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै॥

कायर

जो जग के सब कार्य स्वार्थ के गज से नापै,
सबमें निज-सम सदा स्वार्थ-परता ही भाँपै।
पर हित की चर्चा पर भी डर करके काँपै,
वहाँ कभी ना जाय भद्रजन जुड़ें जहाँ पै।
हा! ऐसे कायर से भला क्या कोई पुरुषार्थ हो,
हों ऐसे सब जिस जाति में वह किस भाँति कृतार्थ हो॥

हिमालय

उत्तर दिसि नगराज अटल-छबि-सहित बिराजत
लसत स्वेत सिर मुकुट, झलक-हिम-सोभा भ्राजत।
वदन देस सविसेस कनक-आभा आभासत
अधोभाग की स्याम-वरन छवि हृदय हुलासत॥ १॥

सोहत सुन्दर सेत-पाँति तरु ऊपर छाई
मानहु विधि पट हरित स्वर्ग सोपान बिछाई।
गहरे गहरे गर्त्त खड्ड दीरघ गहराई
सब्द करत ही घोर प्रतिध्वनि देत सुनाई ॥१२॥

तहाँ निपट निश्शंक वन्य पसु सुख सों विचरत
करत केलि कल्लोल, मुदित आनन्दित विहरत।
कहुँ ईंधन कौ ढेर सिद्ध-आवास जनावत
कहुँ समाधि-स्थित जोगी की गुहा सुहावत ॥१३॥

विविध विलच्छन दृश्य सृष्टि-सुखमा-सुख-मडल
नदन-वन-अनुरूप-भूमि-अभिनय-रगस्थल।
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम-अचरज-आलय
'श्रीधर' दृग छकि रहत अटल-छवि निरखि हिमालय ॥१४॥

वन-शोभा

चारु हिमाचल-आँचल में एक साल बिसालन कौ बन है।
मृदु मर्मर शील झरें जल-स्रोत हैं पर्वत-ओट है निर्जन है॥
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहंगन कौ गन है।
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरै मद बावरौ सौ अलि कौ मन है॥

काली घटा का घमड घटा, नभमडल तारका-वृंद खिले।
उजियाली निशा, छविशाली दिशा अति सोहैं धरातल फूले फले॥

गंगा गोमुख स्रवत कहै को सोभा ताकी ?
वरनै जन्मस्थली वह कि, अथवा जमुना की ?
सतलज, व्यास, चिनाव प्रभृति पंजाव पंच-जल,
सरजू आदि अनेकन नदियन कौ निसरन-थल ॥ ७ ॥

पृष्ठभाग रमनीक रुचिर राजत रावन-ह्रद
गहन करत निज देह सिंधु अरु ब्रह्मपुत्र नद ।
हरिद्वार, केदार, वदरिकाश्रम की सोभा
लखि ऐसौ को मनुज, जासु मन कवहुँ न लोभा ? ॥ ८ ॥

पुनि दखिय कसमीर देस, नैपाल तराई
सिकम और भूटान राज्य आसाम लगाई ।
दच्छिन भुज अफगान-राज-मस्तक सों भेंटत
वाम वाहु सों वरमा के कच-भार समेटत ॥ ९ ॥

ज्यों समर्थ बलवान सुभावहिं सों उदार-मन
देत अभय-वर-दान मान-युत निज आश्रित-गन ।
आर्यावर्त्त पुनीत ललकि हिय भरि आलिंगत
गंगा जमुना अश्रु प्रेम प्रगटत हृदयगत ॥१०॥

रूरे-रूरे गाम अधिक अंतर सों सोहत
रूपवती पर्वती सवी जुवती मन मोहत ।
अगनित पर्वत-खंड चहूँ दिसि देत दिखाई
सिर परसत आकास, चरन पाताल छुआई ॥११॥

सोहत सुन्दर सेत-पाँति तर ऊपर छाई
मानहु विधि पट हरित स्वर्ग-सोपान बिछाई।
गहरे गहरे गर्त्त खड्ड दीरघ गहराई
सब्द करत ही घोर प्रतिध्वनि देत सुनाई ॥१२॥

तहँ निपट निश्शंक वन्य पशु सुख सों विचरत
करत केलि कल्लोल, मुदित आनन्दित विहरत।
कहुँ ईंधन कौ ढेर सिद्ध-आवास जनावत
कहुँ समाधि-स्थित जोगी की गुहा सुहावत ॥१३॥

विविध विलच्छन दृश्य सृष्टि-सुखमा-सुख-मंडल
नंदन-वन-अनुरूप-भूमि-अभिनय-रंगस्थल।
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम-अचरज-आलय
'श्रीधर' दृग छकि रहत अटल-छवि निरखि हिमालय ॥१४॥

वन-शोभा

चारु हिमाचल-आँचल में एक साल बिसालन को बन है।
मृदु मर्मर शील झरैं जल-स्रोत हैं पर्वत-ओट है निर्जन है ॥
लिपटे हैं लता-द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहंगन को गन है।
भटक्यौ तहँ रावरौ भूल्यौ फिरै मद बावरौ सौ अलि को मन है ॥

काली घटा का घमंड घटा, नभमंडल तारका-वृंद खिले।
उजियाली निशा, छविशाली दिशा अति सोहैं धरातल फूले फले ॥

निसरे सुथरे वन-पथ खुले तरु-पल्लव चन्द्रकला से धुले।
वन शारदी-चन्द्रिका-चादर ओढ़ें लसैं समलकृत कैसे भले॥

भारत में वन! पावन तू ही तपस्वियों का तप-आश्रम था।
जग-तत्त्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियो ने अभग्न किया श्रम था॥
जव प्राकृत विश्वका विभ्रम और था, सात्त्विक जीवन का क्रम था।
महिमा वन-वास की थी तब और प्रभाव पवित्र अनूपम था॥

वृन्दावन

नैन किन वृन्दावन-छवि देखहु।
निरखि नित्य-लीला-विहार किन जन्म सुफल करि लेखहु॥
जो चाहै निरखन या छवि कौ है अनन्य-मन प्रानी।
जुगल रूप तिहिं देय दरस प्रभु प्रेमी जन निज जानी॥
जाहि देखि फिर कछु देखन की चाह न मन रहि जाई।
सो रस-रास-विलास-भूमि श्रीवृन्दा-विपिन सुहाई॥
यह देखहु वृषभान-सुता सँग सोहत कुँवर कन्हाई।
वसीवट के निकट मधुर सुर बंसी रहे बजाई॥
सोइ गोपी, सोइ धेनु, वेनु-धुनि सुनि तन-मन बिसराई।
चित्र-लिखित-सी रहीं चकित है मनहु ठगौरी खाई॥
कृष्ण-कृपा लहि भई कृष्ण-मय कृष्ण-प्रेम-पद पाई।
तजि धन धाम गाम कामिनि रहीं कृष्ण-नाम-गुन गाई॥

नाथूराम शकर शर्मा

प्रबोध-पूर्णिमा

जो ससार-सुधार मे रहते हैं अनुरक्त।
वे अमोघ आदर्श हैं जगदुन्नति के भक्त॥ १॥
जो मन वाणी कर्म से सबका करें सुधार।
वे बडभागी धन्य हैं सुकृती परमोदार॥ २॥
जो जीवन के अत ला करता हुआ सुकर्म।
धन्य उसी का मित्र, है सत्य सनातन धर्म॥ ३॥
जो सुकृती ससार का करते हैं उपकार।
पूजें उनको प्रेम से सभ्य, कृतज्ञ उदार॥ ४॥
कर लेता है शुद्ध जो जन आचार विचार।
सत्य सुझाता है उसे तन ससार असार॥ ५॥
धर्मशील माता-पिता अतिथि और आचार्य।
इनकी पूजा प्रेम से करते रहें सदार्य॥ ६॥
मर्म जनावे धर्म का जिसका अनुसधान।
पूजें उस मस्तिष्क को वैदिक देव सुजान॥ ७॥
मान मित्रता का करो प्रेम पवित्र पसार।
मित्र-मडली से मिलो छल कापट्य निसार॥ ८॥
दीनों को सुख-दान दो समझो इसे न पाप।
क्या लोगे यदि हो गए उनसे दुखिया आप॥ ९॥

सुख भोगें दानी धनी उन्नति का मुख चूम ।
धर जाते हैं और को जोड-जोड धन सूम ॥ १० ॥
जन्म भूमि का देश का हो न जिसे अभिमान ।
ऐसे ऊत उतार को मानो मृतक-समान ॥ ११ ॥
धीर, बड़ाई लोक में करो न अपनी आप ।
श्रोता समझेंगे उसे केवल पोच-प्रलाप ॥ १२ ॥
निन्दा करो न और की है यह निन्दित कर्म ।
निन्दक, जानोगे नहीं मनुज-धर्म का मर्म ॥ १३ ॥
पोच पापियों से घृणा करना समझो पाप ।
धर्माधार सुधार में सुधरो अपने-आप ॥ १४ ॥
प्यारे, अब के काम को फिर के लिये न छोड़ ।
चार फलों का साहसी पीले प्यरस निचोड़ ॥ १५ ॥

स्फुट पद्य

शंकर नहीं नंद नवीमन के गीरन थी,
आप घन अंबर में [illegible] गायत्री

जगन्नाथदास रत्नाकर

कलकाशी

परम रम्य सुखरासि कासिका पुरी सुहावनि।
सुर-नर-मुनि-गन्धर्व यच्छ किन्नर-मन भावनि॥
सभु सदासिव विस्वनाथ की अति प्रिय नगरी।
वेद-पुराननि माँहिं गनित गुनगन में अगरी॥ १॥

तीन लोक दस चार भुवन तैं निपट निराली।
निज त्रिसूल पर धारि सभु जो जुग-जुग पाली॥
जाके ककर में प्रभाव सकर कौ राजै।
जम-किंकर जिहिं जानि भयकर दूरहिं भाजै॥ २॥

जामैं तजत सरीर पीर जग जनम-मरन की।
छूटति बिनहिं प्रयास त्रास जम पास परन की॥
जामैं धारत पाय हाथ धरि कूटत छाती।
पातक-पुज परात गात के जनम सँघाती॥ ३॥

सुधि सुरराज-समाज जाति सेवन को तरसत।
दरस परस लहि सरस आँस आनँद के बरसत॥
ब्रह्मा बिष्नु महेस सेस निज वैभव भूले।
धरि धरि वेस असेस जहाँ विचरत सुख फूले॥ ४॥

सुठि सुढार त्रिपुरारि पिनाकाकार बसी है।
उत्तर वरुना औ दक्खिन कौ कोट असी है॥

उत्तर-वाहिनि गंग प्रतिचा प्राची दिसि धर।
उन्नत मंदिर मंजु सिखर जुत लसत प्रखर सर ॥ ५ ॥
बम-बम की हुंकार धनुष-टंकार पसारै।
जाको धमक-प्रहार पापगिरि-द्वार बिदारै॥
जिहि पिनाक की धाक धरामंडल में मंडित।
जासौं होत त्रिताप-दाप त्रिपुरासुर खंडित ॥ ६ ॥
घेरी उपवन बाग बाटिकानि सौं सुठि सोहै।
ज्यौं नंदन-बन बीच बस्यौ सुरपुर मन मोहै॥
बापी कूप तड़ाग जहाँ तहँ बिमल बिराजैं।
भरे सुधा सम सलिल रसिकजन हिय लौं भ्राजैं ॥ ७ ॥
धवल धाम अभिराम अमित अति उन्नत सोहैं।
निज सोभा सौं बेगि बिस्वकर्मा मन मोहैं॥
ध्वजा पताका तोरन सौं बहु भाँति सजाए।
चित्रित चित्र बिचित्र द्वार पर कलस धराए ॥ ८ ॥
हाट बाट घर घाट घने अति बिसद बिराजैं।
गुदड़ी गोला गंज चारु चौहट छबि छाजैं॥
नीकी निपट नखास सुघर सट्टी सब सोहैं।
कल कटरा वर बार मंजु मंडी मन मोहैं ॥ ९ ॥
चारहु बरन पुनीत नीतजुत बसत सयाने।
सुंदर सुघर सुसील स्वच्छ सद्गुन सरसाने॥
जातिधर्म कुलधर्म मर्म के जाननिहारे।
मर्यादा-अनुसार सकल आचार सुधारे ॥ १० ॥

सब निधि सबहिं सुपास सुलभ कासी बासिनि कौं।
निज-निज रुचि अनुसार लहहिं सब सुख-रासिनि कौं॥
असन बसन बर बास धाम अभिराम मनोहर।
ज्ञान गान गुन मान सकल सामग्री वर॥ ११॥
कहुँ सज्जन द्वै चार चारु हरि-जस-रस राँचे।
पुलकित तन मन मुदित सील सद्गुन के साँचे॥
भक्तिभाव भरपूर घूर भव विभव बिचारे।
भगवत-लीला-रचित-मधुर-मदिरा-मतवारे॥ १२॥
कहुँ परम्ह्म प्रसस वस मन मानमचारी।
जीवन मुक्ति मधान मजु मुकता अधिकारी॥
उज्ज्वल प्रकृति प्रवीन हीन भव पक पच्छधर।
जगज्जाल-जजाल-गहन-बन अगम पारकर॥ १३॥
कहुँ पडित सु उदार बुद्धि-बर गुन-गन मडित।
सास्त्र सस्त्र सग्राम करत सुरगुरु-मद खडित॥
विद्या-वारिधि मथन माहिं मदर अति तीके।
कठिन करारे वेद विदित ब्योहार नदी के॥ १४॥
दलन विपच्छिनि-पच्छ माहिं अति दच्छ राम से।
नैयायिक अति निपुन वेद-वेदात धाम से॥
षट सास्त्रनि कौ गूढ ज्ञानधर सिवकुमार से।
वैयाकरन विदग्ध सुमति वारिधि अपार से॥ १५॥
सिष्य पाँति कौं गूढग्रथ बहु भाँति पढ़ावत।
अन्वयार्थ सब्दार्थ भरे भावार्थ बतावत॥

धर्म कर्म व्यवहार विपय जो पूछन आवैं।
तिनकौं करहिं प्रबोध भली विधि बोध बढावैं॥ १६॥
हरि-कीर्तन की कहूँ मडली सुघर सुहाई।
हरि-हर-गुन-गन-गान वितान तनति सुखदाई॥
काम क्रोध मद मोह दनुजदल दलन सदाहीं।
रामचद्र से वचन-बान साधक जिहि माहीं॥ १७॥
लसत धाम अभिराम दिव्य गोमय सौं लीपे।
कुकुम चदन चारु चून ऐपन सौं टीपे॥
तिल तदुल यव पात्र घने घृत भाड भराए।
असन वसन साहित्य सकल जिन माहिं धराए॥ १८॥
कहुँ पाँति की पाँति विप्रगन सहज सुभाए।
कलित कुसासन पै बैठे मन मोद मढाए॥
सुदर गोरे गात वस्त्र उपवस्त्र सँवारे।
सिखा सूत्र औ भस्म रीतिजुत अगनि धारे॥ १९॥
कहूँ साधु सतनि के सोहत सुभग अखारे।
घटा सख मृदग बजत जहँ साँझ सकारे॥
होति आरती पूज्य देव गुरु ग्रथ सुग्रथ की।
पूजा अर्चा भाँति भाँति सौं निज निज पथ की॥ २०॥

चहुँ दिसि द्विघट दलान देखियत दीरघ कोठे।
भरे भव्य भडार निसद बर बने बरोठे॥
आँगन बीच नगीच कूप के मदिर राजत।
जापै चढ्यो निसान सान सौं कवि छवि छाजत॥ २१॥

कहुँ स्वादु कढाइ प्रसाद लगि भोग चढत है।
कहुँ मालपूवा रसाल निहुँ काल कढत है॥
पहुरि बनत मध्याह्न समय बहु रुचिर रसोई।
सब भोजन सब लहत रहत तहँ जब जो कोई॥ २२॥
आवत अभ्यागत अनेक मधुकर-व्रतधारी।
पंच भवन भ्रमि पचभूत पोषन अधिकारी॥
आँचल औ कौपीन कमे कटि कर झोली गहि।
लै मधुकरी प्रथम जात मो नारायन कहि॥ २३॥
बैठि साधु द्वै चार जहाँ तहँ सुचि मनिवारे।
बदन तेज की छटा जटा सिर सुंदर धारे॥
कोऊ कापायी बसन पहिरि कोऊ सिमिरिप रगी।
सज्जन सुघर सुजान सीलसागर सतसगी॥ २४॥
कोउ हरि-लीला कहत सुनत पुलकत पुलकावत।
कोऊ न्याय वेदात बरनि मुलकत मुलकावत॥
कोउ सितार करतार मेरि हरि गुन-गान गावत।
कोउ उमग सों सग मग ढोलक ढमकावत॥ २५॥
सनयासिनि के कहुँ महान मजुल मठ राजैं।
दरदलान कोठे जिनमें चहुँ दिसि छवि छाजैं॥
छत छतरी नर बट खभ गेरू रँग राखे।
अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे॥ २६॥
बट पीपर औ मौलसिरी के बिटप सुहाए।

मैथिलीशरण गुप्त

मातृभूमि

[१]

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुंदर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मंडन हैं,
बन्दी जन खग वृन्द शेष-फन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥

[२]

मृतक समान अशक्त विवश आँखों को मींचे,
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे।
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल अंक में त्राण किया था।
जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही,
तू क्यों न हमारी पूज्य हो ? मातृभूमि, मातामही ! ॥

[३]

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक-सरककर खड़े हुए हैं।
परमहंस-सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण "धूल भरे हीरे" कहलाये।

हम खेले कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृभूमि! तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में?॥

[४]

पालन-पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्ष स्थल पर हमें कर रही धारण तू ही।
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो! तुझी से तुझपर सारे।
हे मातृभूमि! जब हम कभी शरण न तेरी पायँगे,
बस, तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायँगे॥

[५]

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा।
हे मातृभूमि! उपजे न जो तुझसे कृषि अंकुर कभी,
तो तड़प-तड़पकर जल मरें जठरानल में हम सभी॥

[६]

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा?
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है,
बस तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।
हा! अन्त-समय तू ही इसे अचल देख अपनायगी,
हे मातृभूमि! यह अन्त में तुझमें ही मिल जायगी॥

[७]

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता।
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता।
उन सबमें तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्त्व है,
हे मातृभूमि! तेरे सदृश किसका महा महत्त्व है?॥

[८]

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द-सुगंध पवन हर लेता श्रम है।
षट् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है।
शुचि सुधा सींचता रात में तुझपर चन्द्र-प्रकाश है,
हे मातृभूमि! दिन में तरणि करता तम का नाश है॥

[९]

सुरभित सुन्दर सुखद सुमन तुझपर खिलते हैं,
भाँति-भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं।
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नोंवाली।
जो आवश्यक होते हमें मिलते सभी पदार्थ हैं,
हे मातृभूमि! वसुधा, धरा, तेरे नाम यथार्थ हैं॥

[१०]

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी।
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
पुष्पों से तरु राजि कर रही पूजा तेरी।
मृदु मलय-वायु मानों तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही,
हे मातृभूमि ! किसका न तू सात्त्विक भाव बढ़ा रही ? ॥

[११]

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है।
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भयनिवारिणी, शान्ति-कारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि ! तू करती सबका त्राण है,
हे मातृभूमि ! सन्तान हम, तू जननी तू प्राण है।

[१२]

आते ही उपकार याद हे माता ! तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा।
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें,
मन तो होता तुझे उठाकर शीश चढ़ावें।
वह शक्ति कहाँ, हा ! क्या करें, क्यों हमको लज्जा न हो ?
हम मातृभूमि ! केवल तुझे शीश झुका सकते अहो ! ॥

[१३]

कारणवश जब शोक-दाह से हम दहते हैं,
　　तब तुझपर ही लोट-लोटकर दुख सहते हैं।
पाखंडी भी धूल चढ़ाकर तनु में तेरी,
　　कहलाते हैं साधु नहीं लगती है देरी।
इस तेरी ही शुचि धूलि में मातृभूमि ! वह शक्ति है,
　　जो क्रूरों के भी चित्त में उपजा सकती भक्ति है॥

[१४]

कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
　　जो यह समझे हाय ! देखता वह सपना है।
तुझको सारे जीव एक-से ही प्यारे हैं,
　　कर्मों के फल-मात्र यहाँ न्यारे न्यारे हैं।
हे मातृभूमि ! तेरे निकट सबका सम सम्बन्ध है,
　　जो भेद मानता वह अहो ! लोचनयुत भी अन्ध है॥

[१५]

जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
　　उससे हे भगवान् ! कभी हम रहें न न्यारे।
लोट लोटकर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
　　उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।
उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे,
　　होकर भव-बंधन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे॥

शकुन्तला की विदा

शान्त हृदय वात्सल्य-करुण से सना हुआ है,
कण्व-तपोवन आज सदन सा बना हुआ है।
शकुन्तला की विदा आज है प्रिय के घर को,
विदित हुआ सब वृत्त हर्षपूर्वक मुनिवर को ॥ १ ॥

वे पुत्री के लिए चाहते थे वर जैसा,
निज सुकृतों से स्वयं पा लिया उसने वैसा।
यह विचारकर तुष्ट हुए वे अपने मन में,
साज सजाये गये विदा के पावन वन में ॥ २ ॥

शकुन्तला क्या जाय हाय ! वल्कल ही पहने ?
वन-देवों ने दिये उसे सुंदर पट-गहने।
सखियों ने शृंगार किया उसका मन-माना,
जिसको अन्तिम समझ बहुत कुछ उसने जाना ॥ ३ ॥

प्रिय-दर्शन का उसे यदपि उत्साह बड़ा था,
पर स्वजनों का विरह-ताप भी बहुत कड़ा था।
विकल हुई वह उभय ओर की बाधा सहती,
ऊपर नीचे भूमि यथा आकर्षित रहती ॥ ४ ॥

चारों ओर उदास भाव आश्रम में छाये,
सखियों के भी नेत्र आँसुओं से भर आये।
किन्तु उन्होंने कहा—"सखी ! कुछ सोच न कीजो,
'प्रिय को उनकी [illegible] दीजो

शकुन्तला कुछ कह न सकी गद्‌गद होने से,
था पवित्र कुछ और न उसके उस रोने से।
भावी जीवन प्रेम-पूर्ण हो खिल सकता है,
यह बिछुड़ा धन किन्तु कहाँ फिर मिल सकता है? ॥६॥
त्यागी थे मुनि कण्व, उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।
होम-शिखा की परिक्रमा उससे करवाई,
और उन्होंने स्वस्ति-गिरा यों उसे सुनाई ॥ ७ ॥
"तुझको पति के यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा।
सार्वभौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे—
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे ॥ ८ ॥
"गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करें यदपि अपमान, मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से ॥ ९ ॥
"परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूलकर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं,
उलटी चलकर वश-व्याधियाँ कहलाती हैं ॥१०॥
"शकुन्तले निश्चिन्त आज हूँ यद्यपि तुझसे,
सहा न जाता किन्तु विरह यह-तेरा मुझसे।

अहो ! गृहस्थ-समान मानता हूँ अपने को,
सखा-सा मैं आज जानता हूँ सपने को ! ॥११॥
"सुते ! तव स्मृति-चिह्न तपोवन में बहुतेरे—
देते थे जो महामोद मानस में मेरे।
उदासीनता बढ़ा रहे हैं आज सभी ये
कुछ के कुछ हो गये दृश्य सब अभी अभी ये ! ॥१२॥
"सारा आश्रम आज शून्यता दिखलाता है,
वन से भी वैराग्य-भाव बढ़ता जाता है।
वनदेवी-सी कौन विपिन में अब विचरेगी ?
मृग-सन्तति अब किसे घेरकर खेल करेगी ? ॥१३॥
"कौन मालिनी तीर नीर लेने जावेगी ?
कौन मछलियाँ चुगा-चुगाकर सुख पावेगी ?
कौन प्रेम से पुष्प-वाटिका को सींचेगी ?
कौन अचानक सखीजनों के दृग मीचेगी ? ॥१४॥
"कौन दौड़कर शीघ्र उठाने को हीरे-से
नीड़-च्युत खग पोत सँभालेगी धीरे से ?
रंग-रंग के वन विहङ्ग पेड़ों से उड़कर—
बोलेंगे मृदु वचन बैठ किसके अंगों पर ? ॥१५॥
"बिना कहे ही कौन अखिल आलसता त्यागे—
रक्खेगी होमोपकरण वेदी के आगे ?
मेरे पथ के कौन कास-कण्टक चुन लेगी ?
कौन उचित आतिथ्य अतिथि लोगों को देगी ? ॥१६॥

"वेदी खुदती देख हरिण-शृङ्गों के मारे—
'बेटी' कहकर किसे बुलाऊँगा मैं द्वारे ?
किसको आया देख शान्त वे हो जावेंगे ?
अपनी खोई हुई सम्पदा सी पावेंगे ॥१७॥
"जाने दूँ, यह विषय और भी है दुखदायी,
सुते ! धैर्य धर, बने मार्ग तेरा सुखदायी।
मेरा वह उपदेश कभी तू भूल न जाना,
शील-सुधा से सींच जगत को स्वर्ग बनाना" ॥१८॥
यों कहकर जब मौन हुए मुनि सकरुण होकर—
शकुन्तला गिर पड़ी पदों में उनके रोकर।
"होंगे कब हे तात ! तपोवन के दर्शन फिर ?"
इतना कहकर हुई दु:ख से वह अति अस्थिर ॥१९॥
"रहकर चिरदिन भूमि-सपत्नी, नृप की रानी,
रुके न जिसका मार्ग पुत्र पाकर कुलमानी।
करके उसका व्याह, राज्य-सिंहासन देकर
आवेगी पति-सग यहाँ फिर तू यश लेकर ॥२०॥
"जब तू प्रिय के यहाँ सुगृहिणी-पद पावेगी,
गुरु कार्यों मे लीन सदा सुख सरसावेगी।
रवि को प्राची-सदृश श्रेष्ठ सुत उपजावेगी,
तब यह मेरा विरह-दु:ख सब बिसरावेगी" ॥२१॥
यों ही बहुविध इसे कण्व मुनि ने समझाया,
विदा किया, दो शिष्यवरों को सग पठाया।

गई गौतमी तपस्विनी भी पहुँचाने को—
उसका शुभ सौभाग्य देखकर सुख पाने को ॥२२॥
शकुन्तला घर गई विपिन को सूना करके,
दोनों सखियाँ फिरीं किसी विध धीरज धरके।
मोरों ने निज नृत्य, मृगों न चरना छोड़ा,
हिमगिरि ने भी वाष्प वारि-सम झरना छोड़ा। ॥२३॥

झंकार

इस शरीर की सकल शिराएँ हों तेरी तन्त्री के तार,
आघातों की क्या चिन्ता है, उठने दे ऊँची झंकार।
नाचे नियति, प्रकृति सुर साधे, सब सुर हों सजीव, साकार,
देश देश में, काल काल में, उठे गमक-गहरी गुंजार।
कर प्रहार, हाँ, कर प्रहार तू, मार नहीं, यह तो है प्यार,
प्यारे, और कहूँ क्या तुझसे, प्रस्तुत हूँ मैं, हूँ तैयार।
मेरे तार तार से तेरी, तान तान का हो विस्तार,
अपनी अँगुली के धक्के से खोल अखिल श्रुतियों के द्वार।
ताल ताल पर भाल झुकाकर मोहित हों सब बारबार,
लय बँध जाय और क्रम क्रम से सम में समा जाय संसार॥

यात्री

रोको मत, छेड़ो मत कोई मुझे राह में,
चलता हूँ आज किसी चंचल की चाह में।
काँटे लगते हैं, लगें, उनको सराहिए,
कंटक निकालने को कंटक ही चाहिए॥
घहरा रहे हैं घन चिन्ता नहीं इनकी,
अवधि न बीत जाय हाय! चार दिन की।
छाया है अँधेरा, रहे, लक्ष्य है समक्ष ही,
दीप्ति मुझे देगा अभिराम कृष्ण पक्ष ही॥
ठहरो, समक्ष ही तो क्षुब्ध पारावार है,
करना उसे ही अरे! आज मुझे पार है।
भूत मिलें, प्रेत मिलें, वे मरे—मैं जीता हूँ,
भीति क्या करेगी भला, प्रीति-सुधा पीता हूँ॥
मौत लिए जा रही है, तो फिर क्या डर है?
दूती वह प्रिय की है, दूर नहीं घर है।
आपको न देखा आप मैंने कभी आपमें,
डूबेगा विलाप आज डूबेगा मिलाप में॥



रामनरेश त्रिपाठी

प्रकृति-वर्णन

छूता हुआ गाँव की सीमा अति निर्मल जलवाला।
बहता है अविराम निरंतर कल-कल स्वर से नाला।
अनति दूर पर हरियाली से लादी खड़ी गिरि-माला।
किन्तु नहीं इससे हृदयों में है आनद-उजाला ॥ १ ॥

कहीं श्याम चट्टान, कहीं दर्पण-सा उज्ज्वल सर है।
कहीं हरे तृण खेत, कहीं गिरि-स्रोत प्रवाह प्रखर है।
कहीं गगन के खंभ नारियल, तार भार सिर धारे।
रस-रसिकों के लिए खड़े ज्यों सुभ्र नकार इशारे ॥ २ ॥

ऊँचे से झरने झरते हैं, शीतल धार धवल है।
यहाँ परम सुख शान्ति-समन्वित नित आनद अटल है।
कहीं धार के पास शिला पर बैठ लोग क्षण भर को।
पा सकते हैं शान्ति, मिटा सकते हैं जी के ज्वर को ॥ ३ ॥

बार-बार वक पंक्ति-गमन से उज्ज्वल फूलोंवाली।
मेघपुष्प-वर्षा से धूमिल घटा क्षितिज पर काली।
लहराती दृग की सीमा तक धानों की हरियाली।
वारिज-नयन गगन-छवि-दर्शक सर की छटा निराली ॥ ४ ॥

निम्ब कदम्ब आम्र इमली की श्याम निरातप छाया।
सेवन कर फिर लोभ-शोक की याद न रखती काया।

बैठ बाग की विशद मेंड पर कोमल अमल पवन में।
आँख मूँद करता किसान है श्रम का अनुभव मन में॥ ५॥
कोकिल का आलाप पपीहे की विरहाकुल बानी।
तोता मैना का विवाद बुलबुल की प्रेम-कहानी।
मधुर प्रेम के गीत तरुनियाँ गातीं खेत निरातीं।
क्या ये क्षण भर को न किसी के मन का कष्ट भुलातीं॥ ६॥

विमलोदक पुष्कर में विकसे चित्र-विचित्र कुसुम हैं।
खड़े चतुर्दिक शान्त भाव से लतिकालिंगित द्रुम हैं।
देख सलिल-दर्पण में शोभा वे फूले न समाते।
दे प्रसून-उपहार सरोवर को निज हर्ष जनाते॥ ७॥

मंजुल मंजुल सदा सुसज्जित मज्जित छदन-विसर से।
अलि-कुल-आकुल बकुल मुकुल-संकुल-व्याकुल नभचर से।
आसपास का पथ सुरभित है महक रही फुलवारी।
बिछी फूल की सेज, बाजती वीणा है सुखकारी॥ ८॥

नालों का संयोग, साँझ का समय, घना जंगल है।
ऊँचे-नीचे खोह कगारे निर्जन बीहड़ थल है।
रह-रहकर सौरभ समीर में हैं बन पुष्प उड़ाते।
ताप तप्त जन यहाँ क्यों न आकर क्षण एक जुड़ाते॥ ९॥
सन्ध्या समय चतुर्दिक से बहु हर्ष-निनाद सुनाते।
विविध रूप-रंगों के पक्षी झुंड-झुंड मिल आते।
बैठ पल्लवों पर सब मिलकर गान मनोहर गाते।
अद्भुत वाद्य-यंत्र पादप को हैं प्रतिदिवस बनाते॥ १०॥

प्रात काल ममत्व-हीन वे कहाँ-कहाँ उड जाते।
जग को हैं अनित्य मेले को रोचक पाठ पढाते।
यह सब देख नहीं क्यों मन में उत्तम भाव समाते।
लोग यहाँ पर बैठ घडी भर क्यों न सोख कुछ जाते ॥ ११ ॥

अति निस्तब्ध निशीथ तमावृत मौन प्रकृति-कुल मारा।
शान्त गगन में झिलमिल करते हैं नित नीरव तारा।
निद्रित दिशा, समीर सुकोमल, उदयोन्मुख हिमकर है।
क्या सब शोक भुलाने का यह नहीं एक अवसर है ॥ १२ ॥

गिरि, मैदान, नगर, निर्जन में एक भाव में भाती।
सरल कुटिल अति तरल मृदुल गति से बहु रूप दिखातीं।
अस्थिर समय समान प्रवाहित ये नदियाँ कुछ गातीं।
चलीं कहाँ से, कहाँ जा रहीं, क्यों आईं, क्यो जातीं ? ॥ १३ ॥

कोमल पथ है, दिशा शान्त है, वायु स्वच्छ सुखकर है।
गान भृंग का, नृत्य मोर का, दृश्य बड़ा सुन्दर है।
ऐसी विविधि विलक्षणता से सजा प्रकृति का तन है।
होते क्यों न देखकर इनको हर्ष विमोहित जन हैं ॥ १४ ॥

पकज, रम्भा, मदन, मल्लिका, पोस्त, गुलाब, बकुल का।
रक्तक, कुन्द-कली, पिक, किंशुक, नरगिस, मधुकर-कुल का।
समह है चम्पक शिरीष का धर्म सुरभिमय न्यारी।
मानो फूल रही है सुदर घर घर में फुलवारी ॥ १५ ॥

एक-एक तृण बतलाता है जगदीश्वर की सत्ता।
व्यापक है लघु से लघु में भी उसकी विपुल महत्ता।

एक मधुर संगीत हो रहा है ब्रह्मांड-भवन में।
उसकी ही ध्वनि गूँज रही है अणु परमाणु गगन में ॥ १६ ॥
ग्रहगण एक नियत कक्षा में फिरकर स्वर भरते हैं।
सदा उसी की पूर्ति-हेतु वे प्रणव-गान करते हैं।
आँधी का आवेग, मेघ की गरज, चमक बिजली की।
पत्तों की सुमधुर मर्मर-ध्वनि, हँसी प्रसून-कली की ॥ १७ ॥
सरिता का चुपचाप सरकना, दहन-स्वभाव अनल का।
झरनों का अविराम नाद, कलकल रव चचल जल का।
मधुरालाप, प्रलाप, विपुल आघोष क्षुब्ध वारिधि का।
भिन्न भिन्न भाषा मनुष्य की उच्चारण बहु विधि का ॥१८॥
खग, पशु, कीट, पतंग आदि के बोल विभिन्न समय के।
हैं सप्त मन्द्र तार स्वर उसके ताल सहायक लय के।
वज्रपात है थाप उसी की, ऋतुएँ हैं गति उसकी।
जीवन है वह अखिल विश्व का, महाप्रलय यति उसकी ॥१९॥
कैसा सुर-संगीत शांतिप्रद उज्ज्वल अमल विमल है।
उसका सुनना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य अटल है।
साधु संयमी उसे श्रवण कर भवसागर तरते हैं।
योगी जन सुनकर उसको अमरत्व प्राप्त करते हैं ॥ २० ॥

कहाँ ?

ना मंदिर में, ना मसजिद में, ना गिरजे के आस-पास में,
ना पर्वत में, ना नदियों में, ना घर बैठे, ना प्रवास में।
ना कुंजों में, ना उपवन के शांति-भवन या सुख-निवास में,
ना गाने में, ना बाने में, ना आँसू में, नहीं हास में।
ना छंदों में, ना प्रबंध में, अलंकार ना अनुप्रास में,
खोज ले कोई राम मिलेंगे दीन जनों की भूख-प्यास में।

जागरण

जाग रण ! जाग, निज राग भर त्याग में,
विश्व के जागरण का तुही चिह्न है।
सृष्टि परिणाम है घोर संघर्ष का,
शांति तो मृत्यु का एक उपनाम है॥ १॥

श्वास-प्रश्वास इस देह के साथ ही
जन्म ले नित्य के यात्रियों की तरह
लक्ष्य की ओर दिन-रात गतिवान हैं,
प्राणधारी नहीं जानता कौन यह ? ॥ २॥

सृष्टि के आदि से नित्य रवि और तम
एक ही वेग से मग्न हैं दौड़ में।
क्लांत हो जायँ, पर शांति होंगे न वे
व्यग्र हैं एक परिणाम की प्राप्ति में॥ ३॥

रात दिन मास ऋतु वर्ष युग कल्प भी
सृष्टि की आयु के साथ प्रत्येक क्षण
युद्ध में रुद्ध हैं, क्यों न हम मान लें
घोर संग्राम ही प्रकृति का ध्येय है ! ॥ ४ ॥

लोक में द्रव्य-बल और श्रम-शक्ति का
तुमुल संग्राम अनिवार्य है सर्वदा।
सत्य है, मानवी जगत् सौंदर्य से
पूर्ण है, किन्तु है दैन्य की ही कला ॥ ५ ॥

भव्य प्रासाद, रमणीय उद्यान वन,
नगर अभिराम, द्रुम-पंक्तिमय राजपथ,।
दिव्य आभरण, कमनीय रत्नावली,
वस्त्र बहु रंग के, यान बहु शान के, ॥ ६ ॥

स्वाद के विविध सुपदार्थ, श्रुति और मन-
हरण प्रिय नाद को क्यों न हम यों कहें,
व्यापिनी दीनता और संपत्ति के
घोर संघर्ष के इष्ट परिणाम हैं ॥ ७ ॥

नींद जिस भाँति बल-वृद्धि का हेतु है,
मृत्यु भी नव्य रण-भूमि का द्वार है,
चाहती है प्रकृति घोर संघर्ष, तो
शांति की कल्पना बुद्धि का दैन्य है ॥ ८ ॥

सियारामशरण गुप्त

एक फूल की चाह

[१]

उद्वेलित कर अश्रु-राशियाँ, हृदय चिताएँ धधकाकर,
महा महामारी प्रचंड हो फैल रही थी इधर-उधर।
क्षीणकंठ मृतवत्साओं का करुण रुदन दुर्दान्त नितान्त,
भरे हुए था निज कृश-रव में हाहाकार अपार अशान्त।
बहुत रोकता था सुखिया को, 'न जा खेलने को बाहर',
नहीं खेलना रुकता उसका नहीं ठहरती वह पल भर।
मेरा हृदय काँप उठता था बाहर गई निहार उसे,
यही मानता था कि बचा लूँ किसी भाँति इस बार उसे।
भीतर जो डर रहा छिपाये, हाय! वही बाहर आया,
एक दिवस सुखिया के तनु को ताप-तप्त मैंने पाया।
ज्वर में विह्वल हो बोली वह, क्या जानूँ किस डर से डर,—
मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर!

[२]

बेटी, बतला तो तू मुझको, किसने तुझे बताया यह?
किसके द्वारा, कैसे, तूने भाव अचानक पाया यह?
मैं अछूत हूँ, मुझे कौन हा! मंदिर में जाने देगा?
देवी का प्रसाद ही मुझको कौन यहाँ लाने देगा?

वार-बार फिर-फिर तेरा हठ ! पूरा इसे करूँ कैसे ?
किससे कहूँ, कौन वतलावे, धीरज हाय ! धरूँ कैसे ?

कोमल कुसुम-समान देह हा ! हुई तप्त अगारमयी,
प्रतिपल बढती ही जाती है विपुल वेदना व्यथा नई।

मैंने कई फूल ला-लाकर रक्खे उसकी खटिया पर,
सोचा,—शात करूँ मैं उसको किसी तरह तो बहलाकर।

तोड मोड वे फूल फेंक सब बोल उठी वह चिल्लाकर—
मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर !

[२]

क्रमश. कठ क्षीण हो आया शिथिल हुए अवयव सारे,
बैठा था नव-नव उपाय की चिन्ता में मैं मन मारे।

जान सका न प्रभात सजग से हुई अलस कब दोपहरी,
स्वर्ण-घनो में कब रवि डूबा, कब आई सध्या गहरी।

सभी ओर दिखलाई दी बस अन्धकार की ही छाया,
छोटी-सी बच्ची को ग्रसने कितना बडा तिमिर आया !

ऊपर विस्तृत महाकाश में जलते-से अगारों से,
झुलसी-सी जाती थी आँखें जगमग जगते तारों से।

देख रहा था—जो सुस्थिर हो नहीं बैठती थी क्षण भर,
हाय ! वही चुपचाप पडी थी अटल शाति-सी धारण कर।

सुनना वही चाहता था मैं उसे स्वय ही उकसाकर—
मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर !

[४]

हे मात, हे शिवे, अम्बिके, तप्त ताप यह शान्त करो,
निरपराध छोटी बच्ची यह, हाय ! न मुझसे इसे हरो !
काली कान्ति पड़ गई इसकी, हँसी न जानें गई कहाँ,
अटक रहे हैं प्राण क्षीणतर साँसों में ही हाय यहाँ !
अरी निष्ठुरे, चढ़ी हुई ही है यदि तेरी त्या नितान्त,
तो कर ले तू उसे इसी क्षण मेरे इस जीवन से शान्त !
मैं अछूत हूँ तो क्या मेरी विनती भी है हाय ! अपूत ?
उससे भी क्या लग जावेगी तेरे श्रीमंदिर को छूत ?
किसे ज्ञात, मेरी विनती वह पहुँची अथवा नहीं वहाँ,
उस अपार सागर का दीखा पार न मुझको कहीं वहाँ।
अरी रात, क्या अक्षयता का पट्टा लेकर आई तू ?
आकर अखिल विश्व के ऊपर प्रलय घटा-सी छाई तू !
पग भर भी न बढ़ी आगे तू, डटकर बैठ गई ऐसी,
क्या न अरुण आभा जागेगी, सहसा आज विकृति कैसी !
युग के युग-से बीत गये हैं, तू ज्यों-की-त्यों है लेटी,
पड़ी एक करवट कब से तू, बोल, बोल, कुछ तो बेटी !
वह चुप थी, पर गूँज रही थी उसकी गिरा गगन-भर भर,—
'मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल तुम दो लाकर !'

[५]

"कुछ हो, देवी के प्रसाद का एक फूल तो लाऊँगा,
हो तो प्रातःकाल, शीघ्र ही मंदिर को मैं जाऊँगा।

तुझपर देवी की छाया है, और इष्ट है यही तुझे,
देखूँ, देवी के मंदिर में रोक सकेगा कौन मुझे !"

मेरे इस निश्चल निश्चय ने झट-से हृदय किया हलका,
ऊपर देखा,—अरुण राग से रंजित भाल नभस्थल का

झड़-सी गई तारकावलि थी म्लान और निष्प्रभ होकर,
निकल पड़े थे खग नीड़ों से मानों सुधबुध-सी खोकर

रस्सी-डोल हाथ में लेकर निकट कुएँ पर जा जल खींच,
मैंने स्नान किया शीतल हो, सलिल-सुधा से तनु को सींच

उज्ज्वल वस्त्र पहन घर आकर अशुचि-ग्लानि सब धो डाली,
चन्दन-पुष्प कपूर-धूप से सज ली पूजा की थाली।

सुखिया के सिरहाने जाकर मैं धीरे-से खड़ा हुआ,
आँखें झँपी हुई थीं, मुख भी मुरझा-सा था पड़ा हुआ।

मैंने चाहा,—उसे चूम लूँ, किन्तु अशुचिता से डरकर,
अपने वस्त्र सँभाल, सिकुड़कर खड़ा रहा कुछ दूरी पर।

वह कुछ-कुछ मुसकाई सहसा, जानें किन स्वप्नों में लग्न,
उसकी वह मुसकाहट भी हा ! कर न सकी मुझको मुद-मग्न।

अक्षम मुझे समझकर क्या तू हँसी कर रही है मेरी ?
बेटी, जाता हूँ मंदिर मैं आज्ञा यही समझ तेरी।

उसने नहीं कहा कुछ, मैं ही बोल उठा तब धीरज धर,—
तुझको देवी के प्रसाद का एक फूल तो दूँ लाकर !

[६]

ऊँचे शैल शिखर के ऊपर मन्दिर था विस्तीर्ण विशाल,
स्वर्ण-कलश-सरसिज विहसित थे पाकर समुदित रवि-कर-जाल।
परिक्रमा-सी कर मंदिर की ऊपर से आकर झर झर,
वहाँ एक झरना झरता था कल-कल मधुर गान कर कर।
पुष्पहार-सा जँचता था वह मंदिर के श्रीचरणों में,
त्रुटि न दीखती थी भीतर भी पूजा के उपकरणों में।
दीप धूप से आमोदित था मंदिर का आँगन सारा,
गूँज रही थी भीतर-बाहर मुखरित उत्सव की धारा।
भक्त-वृन्द मृदु मधुर कंठ से गाते थे सभक्ति मुदमय,—
'पतित-तारिणी पाप-हारिणी, माता, तेरी जय जय-जय।'
'पतित-तारिणी, तेरी जय-जय,'—मेरे मुख से भी निकला,
बिना बढ़े ही मैं आगे को जाने किस बल से ढिकला।
माता, तू इतनी सुन्दर है, नहीं जानता था मैं यह
माँ के पास रोक बच्चो को, कैसी विधि यह तू ही कह?
आज स्वयं अपने निदेश म तूने मुझे बुलाया है,
तभी आज पापी अछूत यह श्रीचरणों तक आया है।
मेरे दीप-फूल लेकर वे अम्बा को अर्पित करके
किया पुजारी ने प्रसाद जब आगे को अंजलि भरके,
भूल गया उसका लेना झट, परम लाभ-सा पाकर मैं,
सोचा,—बेटी को माँ के ये पुण्य-पुष्प दूँ जाकर मैं।

[७]

सिंह-पौर तक भी आँगन से नहीं पहुँचने मैं पाया,
सहसा यह सुन पडा कि—"कैसे यह अछूत भीतर आया?
पकडो, देखो भाग न जावे, बना धूर्त यह है कैसा,
साफ-स्वच्छ परिधान किये है, भले मानुषों के जैसा!
पापी ने मंदिर में घुसकर किया अनर्थ बडा भारी,
कलुषित कर दी है मंदिर की चिरकालिक शुचिता सारी।"
ऐं, क्या मेरा कलुष बडा है देवी की गरिमा से भी,
किसी बात में हूँ मैं आगे माता की महिमा के भी?
माँ के भक्त हुए तुम कैसे करके यह विचार खोटा?
माँ के सम्मुख ही माँ का तुम गौरव करते हो छोटा!
कुछ न सुना भक्तों ने, झट-से मुझे घेरकर पकड लिया,
मार-मारकर मुक्के-घूँसे धम-से नीचे गिरा दिया!
मेरे हाथों से प्रसाद भी बिखर गया हा! सबका सब,
हाय! अभागी बेटी, तुझ तक कैसे पहुँच सके यह अब?
मैंने उनसे कहा,—दंड दो मुझे मारकर, ठुकराकर,
बस यह एक फूल कोई भी दो बच्ची को ले जाकर।

[८]

न्यायालय ले गये मुझे वे, सात दिवस का दंड-विधान
मुझको हुआ, हुआ था मुझसे देवी का महान अपमान!
मैंने स्वीकृत किया दंड वह शीश झुकाकर चुप ही रह,
उस असीम अभियोग, दोष का क्या उत्तर देता, क्या कह?

सात रोज ही रहा जेल में या कि वहाँ सदियाँ बीतीं।
अविश्रांत बरसा करके भी आँखें तनिक नहीं रीतीं।
क़ैदी कहते—"अरे मूर्ख, क्यों ममता थी मंदिर पर ही?
पास वहाँ मसजिद भी तो थी, दूर न था गिरजाघर भी।"
कैसे उनको समझाता मैं, वहाँ गया था क्या सुख से,
देवी का प्रसाद चाहा था बेटी ने अपने मुख से।

[९]

दंड भोगकर जब मैं छूटा, पैर न उठते थे घर का,
पीछे ठेल रहा था कोई भय-जर्जर तनु-पंजर को।
पहले की-सी लेने मुझको नहीं दौड़कर आई वह,
उलझी हुई खेल में ही हा! अबकी दी न दिखाई वह।
उसे देखने मरघट को ही गया दौड़ता हुआ वहाँ,—
मेरे परिचित बन्धु प्रथम ही फूँक चुके थे उसे जहाँ।
बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर छाती धधक उठी मेरी,
हाय! फूल-सी कोमल बची हुई राख की थी ढेरी!
अन्तिम बार गोद में बेटी, तुझको ले न सका मैं हा!
एक फूल माँ का प्रसाद भी तुझको दे न सका मैं हा!
वह प्रसाद देकर ही तुझको जेल न जा सकता था क्या?
तनिक ठहर ही सब जन्मों के दंड न पा सकता था क्या?
बेटी की छोटी इच्छा वह कहीं पूर्ण मैं कर देता,
तो क्या अरे दैव, त्रिभुवन का सभी विभव मैं हर लेता?
यहीं चिता पर धर दूँगा मैं, कोई अरे सुनो, वर दो,—
मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही लाकर दो!

गोपालशरणसिंह

शिशु की दुनिया

[१]

माना सदा जाता रजनीश है खिलौना वहाँ,
बनता तमाशा वहाँ नित्य अंशुमाली है।
डाले हुए पैर का अँगूठा मुख में मनोज्ञ,
आता वहाँ याद शिशु-रूपी वनमाली है।
लाली अनुराग की सदैव रहती है वहाँ,
रखती उजाला वहाँ चन्द्र-मुखवाली है।
बनते मनुज भी हैं हाथी और घोड़ा वहाँ,
शिशु! सचमुच तेरी दुनिया निराली है॥

[२]

छाई रहती है सदा सुख की घटा यों वहाँ,
होती कभी चित्त से न दूर हरियाली है।
चिन्ता दुख शोक वहाँ आने नहीं पाते कभी,
करती सदैव वहाँ माता रखवाली है।
मोह मद मत्सर का होता न प्रवेश वहाँ,
रहता न कोई वहाँ कपटी कुचाली है।
राजा है न कोई वहाँ रानी है न कोई वहाँ,
शिशु! सब भाँति तेरी दुनिया निराली है॥

घनश्याम

[१]

श्यामल है नभ श्याम महीतल, श्याम महीरुह भी अभिराम हैं।
श्यामल नीरधि-नीर मनोहर, नीरद नीरज श्याम ललाम हैं।
श्यामल हैं वन बाग सरोवर, श्यामल शैल महा छवि धाम हैं।
कौन भला कह है सकता, इसमें उसमें किसमें घनश्याम हैं॥

[२]

हों अथवा वह हों न कहीं पर, हाँ, सबके मन में घनश्याम हैं।
सुन्दर श्याम-सरोरुह से छवि-धाम विलोचन में घनश्याम हैं।
हैं करते अविराम विहार, छिपे उर-कानन में घनश्याम हैं।
जीवन-दायक हैं घन के सम, जीवन जीवन में घनश्याम हैं॥

ताजमहल

मानी-सा खड़ा है अभिमानी निज गौरव का,
सचमुच ताज तेरा जग में न सानी है।
तुझको विलोक फल मिलता विलोचन का,
आती याद शिल्प-कला रुचिर पुरानी है।
बादशाह शाहजहाँ मुमताज बेगम की,
रह गया तू ही एक प्रीति की निशानी है।
कलकल-नादिनी कलिन्दजा सुनाके तुम्हें,
कह रही मानों वही प्रेम की कहानी है॥

वह छवि

मञ्जुल मयक में, मयकमुखी-आनन में,
वैसी निष्कलक कान्ति देती न दिखाई है।
दृग झिप जाते, देख पाते हम कैसे उसे,
ऐसी प्रभा किसने प्रभाकर में पाई है।
न्यारी तीन लोक से है प्यारी सुखकारी भारी,
सारी मनोहारी छटा उसमें समाई है।
जिसको विलोक फीकी शरद-जुन्हाई होती,
वह मनभाई छवि किसको न भाई है॥१॥

नित्य नई शोभा दिखलाती है लुभाती वह,
किसमें सलोनी सुघराई कहो, ऐसी है।
केतकी की, कुन्द की, कदम्ब की कथा है कौन,
कल्पलतिका में कहाँ कान्ति उस जैसी है।
रति में, रमा में रमणीयता कहाँ है वैसी,
कनक-लता में कमनीयता न वैसी है।
छहर छहर छहराती है छबीली छटा,
आहा, वह सुघर सजीली छवि कैसी है॥२॥

सुषमा उसी की अवलोकके सुधाकर में,
रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं।
घन की घटा में नव निरख उसी की छटा,
मञ्जुल मयूर होते मोद-मद-माते हैं।

फूलों में उसी की शोभा देखके मिलिन्द-वृन्द
फूले न समाते, "गुन-गुन" गुण गाते हैं।
दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी
प्रेम से प्रफुल्लित पतङ्ग जल जाते हैं॥ ३॥

उसको विलोक दामिनि है छिप जाती शीघ्र,
अति मनभावनी भी भामिनी लजाती है।
उसके समीप दीपमालिका न भाती जरा,
मञ्जु-मणि-मालिका भी नेक न सुहाती है।
निज हीनता है मोतियों से सही जाती नहीं,
उनकी इसी से छिद जाती क्या न छाती है।
यह छवि देख-देख दृष्टि तृप्ति पाती नहीं
मनों स्वय प्रेम-वश उसमें समाती है॥ ४॥

कञ्ज-कलिका में नहीं सुषमा मयङ्क की है,
कोमलता कज की मयङ्क ने न पाई है।
चपक-कली में न सुवर्ण की सुवर्णता है,
चम्पक की चारुता सुवर्ण में न आई है।
रत्न की रुचिरता में, मणि की मनोज्ञता में,
एक-दूसरे की प्रभा देवी न दिखाई है।
सबकी निकाई सुघराई मोदादायी महा,
ललित लुनाई उस छवि में समाई है॥ ५॥

तेजधारियों में है कृशानु का भी मान बड़ा,
किन्तु तेजवान है।

पादपों में पारिजात, पर्वतों में हिमवान,
नदियों में जाह्नवी मनोज्ञता की खान है।
मोर-सा मनोहर न कोई खग रूपवान,
फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है।
यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके,
किन्तु उस छवि-सा न कोई छविमान है॥ ६॥

वन-उपवन में, सरोज में, सरोवर में,
सुमन-सुमन में, उसी की सुघराई है।
चम्पक चमेलियों में, नवल नवेलियों में,
ललित लताओं में भी उसकी लुनाई है।
देख पड़ती है रग-रग के विहङ्गमों में,
सुषमा उसी की कुंज-कुंज में समाई है।
सब ठौर देखो, वह छवि दिखलाई देती,
उर में समाई तथा लोचनों में छाई है॥ ७॥



वियोगी हरि

वीर-बत्तीसी

जयतु कंस करि-केहरी ! मधु रिपु ! केशी-काल !
कालिय मद-मर्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥
आदि मध्य अवसान हूँ जामें उदित उछाह ।
सुरस बीर इकरस सदा सुभग सर्वरस-नाह ॥ २ ॥
खंड-खंड ह्वै जाय बरु देतु न पाछें पैंड़ ।
लरत सूरमा खेत की मरत न छाँड़तु मेंड ॥ ३ ॥
खल-खंडन, मंडन सुजन, सरल, सुहृद, सविवेक ।
गुण-गँभीर, रण-सूरमा मिलतु लाख में एक ॥ ४ ॥
मुँहमाँगे रण-सूरमा देतु दान पर-हेतु ।
सीस-दान हूँ देतु पै पीठि-दान नहिं देतु ॥ ५ ॥
दया-धर्म जान्यौ तुहीं सब धर्मनु कौ सार ।
नृप शिवि ! तेरे दान पै बलि हूँ बलि सौ बार ॥ ६ ॥
दल्यौ अहिंसा-अस्त्र लै दनुज दुरत करि युद्ध ।
अजय मोह-गज-केसरी जयतु तथागत बुद्ध ॥ ७ ॥
मृत-रोहित-पट-दानु लै धार्‌यौ धर्म अमन्द ।
खड्ग-धार व्रत धीर, धनि सत्य-वीर हरिचन्द ॥ ८ ॥
किधौं उच्च हिम शृंग-वर किधौं जलधि गभीर ।
किधौं अटल ध्रुव कै दान-वीर मति धीर ॥ ९ ॥

सुरतरु लै कीजै कहा अरु चिन्तामणि ढेरु।
इक दधीचि की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेरु ॥ १० ॥
केसरिया बागो पहिरि, कर कङ्कण, उर माल।
रण-दूलह! वरि लाइयौ दुलहिन विजय-सुबाल ॥ ११ ॥
धनि धनि, सो सुकृती व्रती, सूर-सूर, सतसन्ध।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै खेलतु जासु कबन्ध ॥ १२ ॥
लरतु काल सो लाख में कोई माई कौ लाल।
कहु, केते करवाल को करत कंठ-कलमाल ॥ १३ ॥
रण-सुभट्ट वै मुट्ठ-लौं गहि असि कट्टत मुंड।
उठि कबन्ध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु-रुंड ॥ १४ ॥
लोहित-लथपथ देखिकैं खंड-खंड तन-त्रान।
निकसत हुलसत युद्ध में बडभागिनु के प्रान ॥ १५ ॥
कादर तौ जीवित मरत दिन में बार हजार।
प्रान-पखेरू वीर के उडत एक हीं बार ॥ १६ ॥
जगी जोति जहँ जूझ की खगी खड्ग खुलि भूमि।
रँगी रुधिर सों धूरि, सो धन्य धन्य रण भूमि ॥ १७ ॥
अनल कुंड, असि-धार, कै रफँत रँग्यौ रण-खेत।
त्रय तीरथ तारण-तरण छिति छत्रिय-त्रिय-हेत ॥ १८ ॥
सुभट-सीस-सोनित-सनी समर-भूमि! धनि-धन्य!
नहिं तो सम तारण-तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य ॥ १९ ॥
नमो-नमो कुरु-खेत! तुव महिमा अकथ अनूप।
कण-कण तेरो लेखियतु सहस-तीर्थ-प्रतिरूप ॥ २० ॥

घोय सीसु सान्यौ सदा हृदय-रक्त रण-खेत।
वीर-कृषक कीरति लही करी मही जस-सेत ॥ २१ ॥
हिन्दू-कवि, हिन्दुवान-कवि, हिन्दी-कवि रसकंद।
सुकवि, महाकवि, सिद्धकवि, धन्य धन्य कवि चन्द ॥ २२ ॥
सिवा सुजस-सरसिज सुरस मधुकर मत्त अनन्य।
रस भूषण-भूषण, सुकवि-भूषण, भूषण धन्य ॥ २३ ॥
लहरति चमकति चाव सों तुव तरवार अनूप।
धाय डसति, चौंधति चखनु, नागिनि दामिनि रूप ॥ २४ ॥
वह शकुन्तला-लाडिलो कबतें माँगतु रोय।
"खड्ग-खिलौना खेलिबे अबहिं लाय दै मोय" ॥ २५ ॥
कह्यौ माय मुख चूमिकैं कर गहाय करवाल।
"जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल ! ॥ २६ ॥
चूर-चूर ह्वै अंत लौं रखियौ कुल की लाज।
जननि-दूध पितु-खड्ग की अहै परिच्छा आज" ॥ २७ ॥
गावत गायक बीन लै निरही राग निहाग।
नाहिं अलापत आजु क्यों मंगल मारू राग ॥ २८ ॥
लावत रँगि रँगरेज ! क्यों पगिया रंग निरंग ?
अब तौ, बस, भावतु वहै सुंदर रंग सुरंग ॥ २९ ॥
जियत बाघ की पीठि पै धनु-धारीनु चढाय।
क्यों न, चितेरे ! चित्र तूँ उमँगि उतारत आय ? ॥ ३० ॥
प्रकृत-वीर को अबहूँ परतु मद नहिं वेग।
नहिं चाहतु चन्दन चिता भीष्म छाँडि सर-सेज ॥ ३१ ॥

मिली हमें थर्मोपिली* ठौर ठौर चहुँपास।
लेखिय राजस्थान में लाखनु ल्यूनीडास† ॥ ३२ ॥

वीर-बाहु

समर-प्रमत्त कैधौं द्विरद-दुरूह-सुड,
उद्धत अरुद्ध क्रुद्ध तत्तक धौं युग्मचड।
मथन समोद रौद्र-उदधि कराल कैधौं,
मदर अमद, कै पुरदर के वज्र बड।
प्रबल महान मान-मडन घमड-युक्त,
युद्ध-मध्य खडन अखड खल खड-खड।
छत्र-दड दीनन कों, दुष्टन कों काल-दड,
अतुल उदड बीर ! तेरे वर बाहु-दंड ॥ १ ॥

प्रलय अकाल ह्वैहै धरनि पताल जैहै,
दसहु दिसान मे कृसानु कोपि दैहै दाहु।
मलिन दिनेस ह्वैहै धाय नखतेसहू कों,
लपकि सुलीलि जैहै प्रखर प्रताप-राहु।
रुधिर विभोर युद्ध-कालिका कलोल-भरी,
सुभट-सुमुडन की धारि माल लैहै लाहु।

---

* यूनान देश की एक इतिहास प्रसिद्ध घाटी। —स०

† प्राचीन यूनान का एक सुप्रसिद्ध वीर। —स०

करत कहा धौं आज एरे रणमत्त ! तेरे
फरकि उठे हैं फेरि वे ही क्रांतिकारी बाहु ॥ २ ॥

अधम अधर्म-मत्त म्लेच्छ आततायिन के
सीस भूरि भजिबे कों एही एक गाज है।
निपट निसंक जन्म रंकन को राज एही,
माथ पै अनाथन के एही एक ताज है।
रायगढ़-ईस ! जिसे बीस लागी याही ठावँ,
आर्य धर्मधारिन औ नारिन की लाज है।
निबल-उधारिबे कों, आज हिंद-तारिबे कों
साहि के सपूत ! तेरी बाँह ए जहाज है ॥ ३ ॥

नाचि-नाचि निलज नवेलिन के संग नीच,
हाय-हाय, ऐसे भुज-दंड क्यों लजावै रे।
हृदय लगाय दीन-दलित, अनाथ-माथ
सदय सुबाँह छत्र-छाँह क्यों न छावै रे।
गोरि-गोरि कामिनि के कंठ बीर बाहुन कों,
मानिकैं मृणाल मंजु माल क्यों बनावै रे।
अमित अधर्म देखि-देखि हू अनीति अघ,
कुलिस-कठोर क्यों न बाहु तू उठावै रे ? ॥ ४ ॥

बाहु तौ सराहिए प्रताप रन-बाँकुरे के,
खड्ग चढ़ाए खल-सीस जिन खेलि-खेलि।
बाहु तौ सराहिए समर्थ सिवराजजू के,
सहज स्वराज फेरि थाप्यौ रिपु ठेलि-ठेलि।

बाहु तौ सराहिए गोविन्द वीर-केसरी के,
यवन कृवात-कुड होमे जिन मेलि-मेलि।
बाहु तौ सराहिए बुँदेल छत्रसालजू के,
मुगल मरोरि मींजि डारे जिन पेलि-पेलि ॥ ५ ॥
मसकि मरोरि फोरि-फोरि शत्रु-वज्र-सीस
समर-सुरग-फाग खेली जिन साजि साज।
आर्य-कुल-नारिन की, खड्ग-व्रतधारिन की
लोक-लोक साखी थापि राखी जिन धर्म-लाज।
सबल-सनाथन पै गाज-से गिरे जे आय,
अबल-अनाथन के माथे के बने हैं ताज।
सहित उछाहु भेंटि-भेंटि वीर-बाहु ऐसे,
हृदय चढाय प्रेम-आरती उतारौ आज ॥ ६ ॥



सुमित्रानन्दन पन्त

बादल

सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर-जीवनधर,
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,
सुभग स्वाति के मुक्ताकर,
विहग-वर्ग के गर्भ-विधायक,
कृषक-बालिका के जलधर।

जलाशयों में कमलदलों-सा
हमें खिलाता नित दिनकर,
पर बालक-सा वायु सकल दल
बिखरा देता, चुन सत्वर;
लघु लहरों के चल पलनों में
हमें झुलाता जब सागर,
वही चील-सा झपट, बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर।

भूमि-गर्भ में छिप विहङ्ग-से,
फैला कोमल रोमिल पङ्ख,
हम असख्य अस्फुट बीजों में
सेते साँस, छुडा जड पङ्क,
विपुल कल्पना से त्रिभुवन की
विविध रूप धर, भर नभ-अङ्क
हम फिर क्रीडा-कौतुक करते,
छा अनन्त-उर मे नि शङ्क ।

कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतङ्गज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते,
कभी कीश-से अनिल-डाल में
नीरवता से मुँह भरते,
बृहत्-गृद्ध-से विहग-छदों को
बिखराते नभ में तरते ।

कभी अचानक भूतों का-सा
प्रकटा विकट महा-आकार,
कड़क, कड़क, जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार,

फिर परियों के बच्चों-से हम
सुभग सीप के पङ्ख पसार,
समुद पैरते शुचि-ज्योत्स्ना में,
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार।

अनिल विलोड़ित गगन-सिन्धु में
प्रलय-बाढ़-से चारों ओर
उमड़ उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर घनघोर,
बात बात में, तूल-तोम-सा
व्योम विटप से झटक, झकोर,
हमें उड़ा ले जाता जब द्रुत
दल-बल युत घुस बातुल-चोर।

बुद्बुद्-द्युति तारक-दल-तरलित
तम के यमुना-जल में श्याम
हम विशाल जम्बाल-जाल-से
बहते हैं अमूल, अविराम,
दमयन्ती-सी कुमुद-कला के
रजत-करों में फिर अभिराम
स्वर्ण-हंस-से हम मृदु ध्वनि कर,
कहते प्रिय-सन्देश ललाम।

दुहरा विद्युद्दाम चढा द्रुत,
इन्द्र-धनुष की कर टङ्कार,
विकट पटह-से निर्घोषित हो,
बरसा विशिखों-सा आसार,
चूर्ण चूर्ण कर वज्रायुध से
भूधर को, अति भीमाकार
मदोन्मत्त वासव-सेना-से
करते हम नित वायु-विहार।

स्वर्ण भृङ्ग-तारावलि वेष्टित,
गुञ्जित, पुञ्जित, तरल, रसाल,
मधुगृह-से हम गगन-पटल में
लटके रहते विपुल विशाल,
जालिक-सा आ अनिल, हमारा
नील-सलिल में फैला जाल,
उन्हें फाँस लेता फिर सहसा
मीनों के-से चञ्चल बाल।

व्योम-विपिन में जब वसन्त-सा
खिलता नव-पल्लवित प्रभात
बहते हम तब अनिल-स्रोत में
गिर तमाल तम के-से पात,

उदयाचल से बाल-हंस फिर
उड़ता अम्बर में अवदात,
फैल स्वर्ण पङ्खों से हम भी
करते द्रुत मारुत से बात।

सन्ध्या का मादक पराग पी,
झूम मलिन्दों-से अभिराम,
नभ के नील-कमल में निर्भय
करते हम विमुग्ध विश्राम,

फिर वाडव-से सान्ध्य सिन्धु में
सुलग, सोख उसको अविराम,
बिखरा देते तारावलि-से
नभ में उसके रत्न निकाम।

धीरे धीरे संशय से उठ,
बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह से
फैल लालसा से निशि-भोर,

इन्द्रचाप-सी व्योम-भृकुटि पर
लटक मौन-चिन्ता से घोर,
घोष-भरे विप्लव-भय से हम
छा जाते द्रुत चारों ओर।

पर्वत से लघु धूलि, धूलि से
पर्वत बन, पल में, साकार—
काल-चक्र-से चढते, गिरते,
पल मे जलधर, फिर जल-धार,
कभी हवा मे महल बनाकर,
सेतु बाँधकर कभी अपार,
हम विलीन हो जावे सहसा
विभव-भूति ही-से निस्सार।

नग्न गगन की शाखाओ में
फैला मकडी का-सा जाल,
अम्बर के उडते पतङ्ग को
उलझा लेते हम तत्काल,
फिर अनन्त-उर की करुणा से
त्वरित द्रवित होकर, उत्ताल-
आतप मे मूर्छित कलियों को
जाग्रत करते हिम-जल डाल।

हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल-फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि-वसन, वसुधा के मूल,

नभ में अवनि, अवनि मे अम्बर,
सलिल-भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल मे थल, थल मे जल,
दिन के तम, पावक के तूल।

व्योम-वेलि, ताराओं की गति,
चलते अचल, गगन के गान,
हम अपलक तारों की तन्द्रा,
ज्योत्स्ना के हिम, शशि के यान,

पवन घेनु, रवि के पांशुल श्रम,
सलिल-अनल के विरल वितान,
व्योम-पलक, जल-खग, बहते थल,
अम्बुधि की कल्पना महान।

धूम-धुँआरे, काजर-कारे,
हम ही बिकरारे बादर,
मदन-राज के वीर बहादर,
पावस के उडते फणिधर,

चमक झमकमय मन्त्र वशीकर,
छहर-घहरमय विष-सीकर,
स्वर्ग सेतु-से इन्द्रधनुष धर,
कामरूप घनश्याम अमर।

सुभद्राकुमारी चौहान

मेरा नया बचपन

बार बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी।
गया, ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी॥
चिन्ता-रहित खेलना खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनन्द ?॥
ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था, छुआ-छूत किसने जानी ?
बनी हुई थी अहा ! झोंपडी और चीथडों में रानी॥
किये दूध के कुल्ले मैंने, चूस अँगूठा अमृत पिया।
किलकारी कल्लोल मचाकर सूना घर आबाद किया॥
रोना और मचल जाना भी क्या आनद दिखाते थे।
बडे-बडे मोती-से आँसू जयमाला पहनाते थे॥
मैं रोई, माँ काम छोडकर आई, मुझको उठा लिया।
झाड-पोंछकर चूम-चूम गीले गालों को सुखा दिया॥
दादा ने चन्दा दिखलाया, नेत्र-नीर द्रुत दमक उठे।
धुली हुई मुसकान देखकर सबके चेहरे चमक उठे॥
वह सुख का साम्राज्य छोडकर मैं मतवाली बडी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई-सी, दौड द्वार पर खडी हुई॥
लाज-भरी आँखें थीं मेरी, मन में उमँग रँगीली थी।
तान रसीली थी कानों में, चंचल छैल छबीली थी॥

दिल में एक चुभन सी थी यह दुनिया सब अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी, मैं सबके बीच अकेली थी॥
मिला, खोजती थी जिसको, हे बचपन! ठगा दिया तूने।
अरे! जवानी के फन्दे में मुझको फँसा दिया तूने॥
सब गलियाँ उसकी भी देखीं, उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।
प्यारी-प्रीतम की रँगरलियों की भी स्मृतियाँ प्यारी हैं॥
माना मैंने युवा-काल का जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का उदय मोहनवाला है॥
किन्तु यहाँ झंझट है भारी, युद्ध-क्षेत्र संसार बना।
चिन्ता के चक्कर में पड़कर जीवन भी है भार बना॥
आजा बचपन! एक बार फिर दे दे अपनी निर्मल शान्ति।
व्याकुल व्यथा मिटानेवाली वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति॥
वह भोली-सी मधुर सरलता वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा तू मेरे मन का संताप?॥
मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नंदन वन-सी फूल उठी यह छोटी सी कुटिया मेरी॥
"माँ ओ" कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने आई थी॥
पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतूहल था छलक रहा।
मुख पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-गर्व था झलक रहा॥
मैंने पूछा—'यह क्या लाई?' बोल उठी वह 'माँ, काओ'।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा—'तुम्हीं खाओ'॥

पाया मैंने वचपन फिर से, वचपन वेटी वन आया।
उसकी मजुल मूर्ति देखकर मुझमें नवजीवन आया॥
मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वय मैं भी बच्ची बन जाती हूँ॥
जिसे खोजती थी बरसों से, अब जाकर उसको पाया।
भाग गया था मुझे छोडकर, वह वचपन फिर से आया॥

ठुकरा दो या प्यार करो

देव! तुम्हारे कई उपासक कई ढग से आते हैं।
सेवा में वहुमूल्य भेंट वे कई रंग के लाते हैं॥
धूमधाम से, साजवाज से मदिर मे वे आते हैं।
मुक्ता-मणि वहुमूल्य वस्तुएँ लाकर तुम्हें चढाते है॥
मैं ही हूँ गरीविनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लाई।
फिर भी साहस कर मदिर में पूजा करने को आई॥
धूप-दीप-नैवेद्य नहीं है, झाँकी का शृङ्गार नहीं।
हाय! गले मे पहनाने को फूलों का भी हार नहीं॥
मैं कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी, है स्वर मे माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को वाणी मे चातुर्य नहीं॥
नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई।
पूजा की विधि नहीं जानती, फिर भी नाथ! चली आई॥

पूजा और पुजापा प्रभुवर ! इसी पुजारिन को समझो ।
दान-दक्षिणा और निछावर इसी भिखारिन को समझो ॥
मैं उन्मत्त, प्रेम का लोभी हृदय दिखाने आई हूँ ।
जो कुछ है, बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ ॥
चरणों पर अर्पण है, इसको चाहो तो स्वीकार करो ।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो ॥

फूल के प्रति

डाल पर के मुरझाये फूल ! हृदय में मत कर वृथा गुमान ।
नहीं हैं सुमन कुंज में अभी, इसी से है तेरा सम्मान ॥
मधुप जो करते अनुनय विनय बने तेरे चरणों के दास ।
नई कलियों को खिलती देख नहीं आवेंगे तेरे पास ॥
सहेगा वह कैसे अपमान ? उठेगा वृथा हृदय में शूल ।
भुलावा है, मत करना गर्व, डाल पर के मुरझाये फूल !!



महादेवी वर्मा

उस पार

घोर तम छाया चारों ओर
    घटाएँ घिर आईं घनघोर,
वेग मारुत का है प्रतिकूल
    हिले जाते हैं पर्वतमूल,
गरजता सागर बारम्बार,
                कौन पहुँचा देगा उस पार ?

तरङ्गें उठीं पर्वताकार
    भयंकर करतीं हाहाकार,
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
    तरी का करते हैं उपहास,
हाथ से गई छूट पतवार,
                कौन पहुँचा देगा उस पार ?

ग्रास करने नौका, स्वच्छन्द
    घूमते फिरते जलचर-वृन्द,
देखकर काला सिन्धु अनन्त
    हो गया हा साहस का अन्त !
तरङ्गें हैं उत्ताल अपार,
                कौन पहुँचा देगा उस पार ?

बुझ गया वह नक्षत्र-प्रकाश
चमकती जिसमें मेरी आशा,
रैन बोली सज कृष्ण दुकूल
विसर्जन करो मनोरथ फूल,
न लाये कोई कर्णाधार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

सुना था मैंने इसके पार
बसा है सोने का संसार,
जहाँ के हँसते विहग ललाम
मृत्यु छाया का सुनकर नाम,
धरा का है अनन्त शृङ्गार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

जहाँ के निर्झर नीरव गान
सुना करते अमरत्व प्रदान,
सुनाता नभ अनन्त झङ्कार
बजा देता है सारे तार;
भरा जिसमें असीम-सा प्यार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

पुष्प में है अनन्त मुस्कान

त्याग का है मारुत में गान,

सभी में है स्वर्गीय विकाश

वही कोमल कमनीय प्रकाश,

दूर कितना है वह संसार !

कौन पहुँचा देगा उस पार ?

× × × ×

सुनाई किसने पल में आन

कान मे मधुमय मोहक तान ?

'तरी को ले जाओ मँझधार

डूबकर हो जाओगे पार,

विसर्जन ही है कर्णाधार,

वही पहुँचा देगा उस पार ।'



राय कृष्णदास

चातक

पच्छी जग केते दई दई जिन्हें रूपरासि,
सुरहू दिए हैं हठि हियो जानै छोरि लेत ।
भावै पै न मोहि कोउ इतो जितो चातक जो
आपनी पुकार ही में आपुनो दरस देत ॥
आजु लौं न पेख्यो जाहि कैसो रूप कैसो रंग,
है अराल कै कराल जानै किधौं स्याम-सेत ।
पूरन पढी पै जानै पाटी प्रेम की पुनीत,
जानत जो रीत कैसें जात है निबाह्यो हेत ॥

समर्थन

खब किया, जो तुमने इसको ला पिंजड़े में बंद किया ।
चारा चुगने को बेचारा,
दर-दर फिरता मारा-मारा,
दूध-भात बैठा खाता है, आहा ! क्या आनंद दिया,
तरु-कोटर-वासी निरीह को स्वर्णासन-आसीन किया ।
वन विहग को सुजन बनाया,
बातचीत करना सिखलाया,
राम-नाम का मजा चखाया, अमर किया, स्वाधीन किया ।

वेणु की विनती

भृंग, गुंजरित भृंग, तनिक यह मेरी विनती कान धरो ।
बस, तुम मेरा हृदय वेध दो, फिर गुन गुन गुन-गान करो ॥
यह क्या कहा, क्रूरता होगी, नहीं, अतीव दया होगी ।
छिद्र-पूर्ण होने पर भी मैं हूँगा दुर्लभ सुख-भोगी ॥
उन रन्ध्रों में वह मारुत वह प्रियतम का निश्वास भरे ।
स्वर से मेरे शून्य हृदय की व्यथा-कथा जो व्यक्त करे ॥
धारण किये हुए मैं जिसको मर्मर करके भरता हूँ ।
ध्यान नहीं देता कोई भी लाख यत्न मैं करता हूँ ॥
तुम मधुकर हो, दया-मया कर मुझको यह मधु-दान करो ।
भृंग, गुंजरित भृंग, तनिक यह मेरी विनती कान धरो ॥

पदस्थ

चाह मुझको है नहीं स्वर्ण बन जाने की ।
यद्यपि हूँ जानता कि कंचन हो पाऊँ तो
मौलि का तुम्हारे अलङ्कार बन जाने की
बात क्या, सरूपता तुम्हारी मिल जायगी

अहोभाग्य धन्य हो नगण्य यह जन, पै
हाय ! हिया क्षुद्र इसका तो है सिहरता
कसने के साथ ही कसौटी पै, कनक की
कान्ति,-भ्रान्ति क्षणदा-छटा की घटा श्याम पै,-
कौंध उठती है जहाँ, हाय ! वहीं अपना
एक अग खोके और होके अनुत्तीर्ण भी
पारखी ! तुम्हारी उस प्रथम परीक्षा मे
पड़ता है पतित तुम्हारे पद में पुन
इसका निसर्ग स्थान प्राणनाथ था जहाँ
उठके जहाँ से इस धूलिकण ने प्रभो !
होड़ की थी हाटक की, हाँ हाँ उस हेम की,—
कौन कसे जाने की कहे जो ताप ताड़ना—
छेदनादि को भी खेल मे ही मेल लेता है,—
पाया उसका जो स्वाद याद सदा रक्खेगा !
किन्तु अब है हुआ पदस्थ, अब तो इसे
कामद पदारविन्द का पराग होने दो
मधुर मरन्द से उसी के सानन्द हो॥



जयशङ्कर 'प्रसाद'

भारत-महिमा

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक-हार॥
जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक॥
विमल वाणी ने वीणा ली कमल-कोमल-कर में सप्रीत।
सप्तस्वर सप्तसिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-सङ्गीत॥
बचाकर बीज-रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत॥
सुना है दधीचि का वह त्याग—हमारी जातीयता-विकास।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थि-युग का मेरे इतिहास॥
सिन्धु-सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह॥
धर्म का ले-लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शान्ति-सन्देश, सुखी होते देकर आनन्द॥
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट्, दया दिखलाते घर-घर घूम॥
यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि॥

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्म-भूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं॥
जातियों का उत्थान पतन, आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर।
खड़े देखा, झेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर॥
चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न॥
हमारे सञ्चय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव।
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव॥
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।
वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य-सन्तान॥
जियें तो सदा उसी के लिये, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥



परिशिष्ट

कवि-परिचय

कबीर—

कबीर साहब का जन्म काशी के पास विक्रम संवत् १४५६ में हुआ था। ये जाति के जुलाहे थे। इनके पिता का नाम नीरू और माता का नीमा बतलाया जाता है। काशी में साधु-सन्तों के समागम से कबीर साहब के हृदय में वैराग्य के भाव जमने लगे। इन्होंने स्वामी रामानन्दजी को अपना गुरु बनाया। उस समय स्वामी रामानन्द का प्रभाव खूब बढ़ रहा था और छोटे-बड़े, ऊँच नीच सब उनके उपदेशामृत से तृप्त हो रहे थे। कबीर ने अपने नाम से कबीर-पन्थ चलाया, जिसमें सूफी-धर्म और वेदान्त के आधार पर सब धर्मों की एकता सिद्ध की गई। इनके शिक्षा वचनों का संग्रह 'बीजक' ग्रन्थ में हुआ है, जिसके मुख्य भाग हैं—साखी, सबद और रमैणी। हिन्दू मुसलमान दोनों ने इनके भावपूर्ण उपदेशों से शिक्षा ग्रहण की। शिक्षित न होने पर भी ये अपने सिद्धान्त के बहुत पक्के थे और हिन्दू मुसलमानों को उनकी कुरीतियों के लिए फटकारते थे। यद्यपि इनकी कविता में कहीं कहीं ऊटपटाँग भाषा है, किन्तु भाव बहुत स्पष्ट हैं और धर्म्म के गूढ़ तत्त्व बड़े सरल ढङ्ग से समझाये गये हैं। कबीर निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं। इनका मृत्युकाल विक्रम संवत् १५७५ माना जाता है।

मलिक मुहम्मद जायसी—

मलिक मुहम्मद प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहिउद्दीन के शिष्य थे। अवध प्रान्त के जायस गाँव के निवासी होने से ये जायसी कहलाए। इनके जन्म मरण का ठीक समय निश्चित नहीं है। ये प्रेममार्गी सूफी शाखा के मुख्य कवि हैं। इन्होंने शेरशाह सूर के राज्य-समय वि० सं० १५९७ में अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' लिखा। 'पद्मावत' में चित्तौड़ के राजा

रतनसेन और सिंहल की राजकुमारी पद्मावती के विवाह तथा पद्मावती के लिये सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड़ की चढ़ाई आदि का वर्णन है। ठेठ अवधी भाषा में दोहा चौपाइयों में रचे हुए इस प्रबन्ध-काव्य में सांसारिक प्रेम के दृष्टान्तों से परमात्मा के प्रेम का दिग्दर्शन हुआ है। 'पद्मावत' की कविता स्वाभाविकता और गम्भीर भावों से व्याप्त है। सुप्रसिद्ध साहित्यालोचक प्रो० रामचन्द्रजी शुक्ल के मतानुसार जायसी ने मुसल्मान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं ही की बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखाया। 'पद्मावत' के सिवा जायसी ने 'अखरावट' नाम का एक वेदान्त विषयक ग्रन्थ भी लिखा। निस्सन्देह हिन्दी साहित्य में जायसी का एक विशेष स्थान है। 'गोरा की वीर गति' जायसी के 'पद्मावत' का एक अंश है।

महात्मा सूरदास—

इनका जन्म विक्रम संवत् १५४० के लगभग आगरा और मथुरा के मार्ग में रुनकता गाँव के एक सारस्वत ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके छ भाई मुसल्मानों के साथ युद्ध में मारे गये। केवल यही शेष रह गये। नेत्रहीन होने के कारण ये युद्ध में नहीं जा सकते थे, इसलिए ये इधर उधर घूमते रहे। एक बार आप कुएँ में गिर पड़े और वहीं छ दिन तक पड़े रहे। अन्त में दीनदयालु भगवान् ने कृष्ण रूप में प्रकट होकर, इन्हें दृष्टि प्रदान कर अपने रूप का दर्शन कराया और कुएँ से बाहर निकाला। सूरदासजी ने वर माँगा कि जिन नेत्रों से मैंने भगवान् का रूप देखा, उनसे और कोई वस्तु न देखूँ और हृदय में सदा आपका ध्यान बना रहे। इसी से सूरदासजी फिर प्रज्ञाचक्षु हो गए और अपने प्रभु की लीलाभूमि ब्रज में निवास करने लगे। सूर उच्च कोटि के भक्त कवि हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि आपने सवा लाख पदों की रचना की थी, पर अब तक लगभग ५ ६ हजार पद मिले हैं, जिनका संग्रह 'सूरसागर' में हुआ है। श्रीवल्लभाचार्य्यजी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथजी ने सूरदास—

को आठ श्रेष्ठ कृष्णभक्त कवियों में, जो अष्टछाप में गिने जाते हैं, सर्वप्रथम स्थान दिया है। सूरदासजी की कविता का मुख्य विषय है श्रीकृष्णलीला, जिसमें बाललीला, राधाकृष्ण प्रेम और गोपी विरह आदि का सविस्तर एवं सुन्दर वर्णन है। आपकी कविता स्वाभाविकता और सरसता से ओतप्रोत है। जिस तरह कबीर के काव्य में ज्ञान की प्रधानता है, उसी तरह सूरदास में भक्ति की पराकाष्ठा देख पड़ती है। सूरदासजी ब्रजभाषा के तथा वात्सल्य और वियोग श्रृङ्गार रसों के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, इसी से 'सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास' यह लोकोक्ति अब तक प्रचलित है। इनका स्वर्गवास वि० सं० १६२० में हुआ। 'विनय वाणी' आदि सब पद 'सूरसागर' से लिये गये हैं।

अष्टछाप के कवि—

वि० सं० १५८७ में वैष्णव धर्म के विख्यात प्रवर्त्तक और शुद्धाद्वैतवाद के संस्थापक श्रीवल्लभाचार्य्यजी का गोलोकवास होने के पश्चात् उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथजी ने अपने समय तक के, सुन्दर सुन्दर पदों की रचना करनेवाले, पुष्टिमार्ग के अनेक उत्कृष्ट कवियों में से आठ सर्वोत्तम कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास अष्टछाप के कवि हैं। इनकी रचनाएँ 'मिश्रबन्धुविनोद' से ली गई हैं।

परमानन्ददास—ये वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। वि० सं० १६०६ के आसपास कन्नौज में रहने से ये कान्यकुब्ज माने जाते हैं। इन्होंने तन्मयतापूर्वक सरस काव्य रचना की है। जनश्रुति के अनुसार एक बार इनके किसी पद को सुनकर वल्लभाचार्यजी कई दिनों तक अपने तन की सुध भूले रहे। हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज में इनके पदों का एक संग्रह तथा 'ध्रुवचरित्र' और 'दानलीला' नामक ग्रन्थ मिले हैं।

कुम्भनदास—ये परमानन्ददास के समसामयिक थे और धन, मान आदि की लालसा से कोसों दूर रहकर विरक्त जीवन बिताते थे। एक बार

अकबर बादशाह ने इन्हें फतहपुर सीकरी बुलाकर इनका यथेष्ट सम्मान किया, पर इन्हें उसका खेद ही बना रहा, जैसा कि इस पद से जान पड़ता है—

सतन का सिकरी सन काम ?
आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम।
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिन और सबै बेकाम॥

इनका कोई ग्रन्थ अब तक नहीं मिला, परन्तु इनके रचे हुए भगवान् कृष्ण की बाललीला और प्रेमलीला-सम्बन्धी फुटकर पद्य पाये जाते हैं।

चतुर्भुजदास—चतुर्भुजदास कुम्भनदासजी के पुत्र और गोसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। इनके तीन ग्रन्थ–'भक्ति-प्रताप', 'हितजू को मगल' और 'द्वादशयश'–मिले हैं, जिनकी भाषा चलती और व्यवस्थित है। इनके स्फुट पद्य भी यत्र तत्र पाये जाते हैं।

नन्ददास—ये प्राय सूरदासजी के समकालीन थे। इनका काव्यकाल सूरदासजी की मृत्यु के पीछे अथवा उसके कुछ आगे तक माना जाता है। अष्टछाप में सूरदासजी क पश्चात् इन्हीं का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने बहुत सरस एव मधुर पद्य रचना की है। इनके लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'और कवि गढिया, नन्ददास जडिया।' इनका अतिप्रसिद्ध ग्रन्थ 'रासपञ्चाध्यायी' है, जिसमें अनुप्रासादि युक्त साहित्यिक भाषा में श्रीकृष्ण की रासलीला का सविस्तर वर्णन है। इन्होंने कोई १४ पुस्तकें लिखीं, किन्तु 'रासपचाध्यायी' के सिवा केवल तीन–'भ्रमरगीत', 'अनेकार्थमञ्जरी' और 'अनेकार्थनाममाला'–प्रकाश में आई हैं, जिनमें 'भ्रमरगीत' की विशेष प्रसिद्धि है।

गोविन्दस्वामी—य अन्तरी निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की तरह आकर महावन म रहने लगे। फिर गोसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य हुए। इनके सुन्दर पदों से प्रसन्न होकर गोसाईंजी ने इन्हे अष्टछाप में स्थान दिया। ये गोवर्धन पर्वत पर निवास करते थे। उसके समीप इनका लगाया हुआ कदम्बों का सुन्दर उपवन अब भी 'गोविन्दस्वामी की

कदम्बखर्डी' कहलाता है। कवि होने के सिवा ये पक्के गवैये भी थे; तानसेन तक इनका गाना सुनने के लिये आया करते थे। इनका कविता काल वि० सं० १६०० और १६२५ के बीच है।

गोस्वामी तुलसीदास—

गोस्वामीजी का जन्म वि० सं० १५५४ में बाँदा जिले के राजापुर गाँव में सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। कोई इनका जन्म संवत् १५८३ मानते हैं। इनका पहला नाम रामबोला और इनके माता पिता का नाम क्रमशः हुलसी और आत्माराम था। जन्म के पश्चात् ही इनकी माता का देहान्त हो गया और पिता ने इन्हें छोड़ दिया। कुछ समय तक एक दासी ने इन्हें पाला, फिर नरहरिदास (अथवा नरहर्यानन्द) नामक महात्मा ने इन्हें अपने यहाँ रखकर इनके सब संस्कार किए और इनका नाम तुलसीदास रखा। इनसे गोस्वामीजी ने कई बार रामायण की कथा सुनी। फिर काशी में शेष सनातन नामक विद्वान् से इन्होंने विद्याध्ययन किया। तत्पश्चात् इनका विवाह हुआ। कहते हैं कि गोस्वामीजी अपनी स्त्री में अत्यन्त अनुरक्त थे, अतः इनकी अनुपस्थिति में एक बार उसके मायके चले जाने पर आप भी उसके पीछे पीछे अपनी ससुराल को दौड़े गए। इसपर इनकी स्त्री ने इन्हें बहुत फटकारकर कहा कि मुझमें आपकी जितनी प्रीति है उतनी भगवान् श्रीराम में होती, तो आप भवबन्धन से मुक्त हो जाते। यह बात गोसाईंजी को चुभ गई और ये काशी आकर विरक्त हो गए। फिर लगभग बीस वर्ष तक इन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया, और चित्रकूट, अयोध्या, काशी आदि में रहते हुए वि० सं० १६८० में काशी पुरी में इनका स्वर्गवास हुआ।

गोस्वामीजी हिन्दी के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं। वस्तुतः तुलसीदासजी के नाम से अपरिचित होना हिन्दी साहित्य से अनभिज्ञ रहने के समान है। जिस प्रकार सूरदासजी कृष्ण के परम भक्त थे, उसी तरह गोस्वामीजी राम के अनन्य उपासक थे। गोस्वामीजी का 'रामचरितमानस'

अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। श्रीमद्भगवद्गीता के सिवा सारे भारतीय साहित्य में समवतः ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है जिसका रामचरितमानस की तरह प्रचार हुआ हो। पढ़े लिखे या अपढ़, सभी को हिन्दू जाति के इस आदर्श धर्म ग्रन्थ की दोहा चौपाइयाँ कण्ठ रहती हैं और कहावतों तथा धर्मवाक्यों की तरह उनका प्रयोग होता है। 'रामचरितमानस' में गोस्वामीजी ने सरल और मधुर अवधी भाषा की उत्कृष्ट कविता में श्रीराम का आदर्श चरित्र अङ्कित करके जातीय जीवन में नवजीवन का संचार किया और मानव जीवन के उच्च आदर्शों की स्थापना की। मनुष्य-जीवन की ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है, जिसका चित्रण इस ग्रन्थ रत्न में न हुआ हो। गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों में 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली', 'कृष्णगीतावली', 'दोहावली', 'बरवै रामायण' और 'तुलसी सतसई' मुख्य हैं। तुलसीदासजी की कविता ब्रजभाषा और अवधी दोनों में हुई है और इनकी भाषा सरल, सुन्दर तथा व्यवस्थित है।

मीराँबाई—

मीराँबाई जोधपुर राज्य के संस्थापक राठौड़ जोधाजी की प्रपौत्री और मेवाड़ के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की धर्मपत्नी थीं। मेड़ता जागीर (जोधपुर राज्य) के चोकड़ी गाँव में वि० सं० १५५५ के आसपास इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही मीराँबाई में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति थी। युवावस्था में ही विधवा हो जाने पर वे अपना सारा समय साधु-महात्माओं के सत्सङ्ग और श्रीकृष्णभक्ति में, जो इनके पितृकुल में पीढ़ियों से चली आती थी, बिताने लगीं। मीराँ की इस प्रवृत्ति से उनके देवर और तात्कालीन महाराणा विक्रमादित्य अप्रसन्न होकर इन्हें कई प्रकार से सताने लगे। विषपान कराये जाने पर भी मीराँ का बाल तक बाँका न हुआ। फिर तीर्थयात्रा के लिये मेवाड़ छोड़कर इन्होंने स्थायी रूप से द्वारकापुरी में निवास किया, जहाँ वि० सं० १६०३ के लगभग इनका मृत्यु-काल माना जाता है। मीराँबाई की

कदम्बखंडी' कहलाता है। कवि होने के सिवा ये पक्के गवैये भी थे, तानसेन तक इनका गाना सुनने के लिये आया करते थे। इनका कविता काल वि० सं० १६०० और १६२५ के बीच है।

गोस्वामी तुलसीदास—

गोस्वामीजी का जन्म वि० सं० १५५४ में बाँदा जिले के राजापुर गाँव में सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। कोई इनका जन्म-संवत् १५८३ मानते हैं। इनका पहला नाम रामबोला और इनके माता पिता का नाम क्रमशः हुलसी और आत्माराम था। जन्म के पश्चात् ही इनकी माता का देहान्त हो गया और पिता ने इन्हें छोड़ दिया। कुछ समय तक एक दासी ने इन्हें पाला, फिर नरहरिदास (अथवा नरहर्यानन्द) नामक महात्मा ने इन्हें अपने यहाँ रखकर इनके सब संस्कार किए और इनका नाम तुलसीदास रखा। इनसे गोस्वामीजी ने कई बार रामायण की कथा सुनी। फिर काशी में शेष सनातन नामक विद्वान् से इन्होंने विद्याध्ययन किया। तत्पश्चात् इनका विवाह हुआ। कहते हैं कि गोस्वामीजी अपनी स्त्री में अत्यन्त अनुरक्त थे, अतः इनकी अनुपस्थिति में एक बार उसके मायके चले जाने पर आप भी उसके पीछे पीछे अपनी ससुराल को दौड़े गए। इसपर इनकी स्त्री ने इन्हें बहुत फटकारकर कहा कि मुझमें आपकी जितनी प्रीति है उतनी भगवान् श्रीराम में होती, तो आप भवबन्धन से मुक्त हो जाते। यह बात गोसाईंजी को चुभ गई और ये काशी आकर विरक्त हो गए। फिर लगभग बीस वर्ष तक इन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया, और चित्रकूट, अयोध्या, काशी आदि में रहते हुए वि० सं० १६८० में काशी पुरी में इनका स्वर्गवास हुआ।

गोस्वामीजी हिन्दी के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं। वस्तुतः तुलसीदासजी के नाम से अपरिचित होना हिन्दी साहित्य से अनभिज्ञ रहने के समान है। जिस प्रकार सूरदासजी कृष्ण के परम भक्त थे, उसी तरह गोस्वामीजी राम के अनन्य उपासक थे। गोस्वामीजी का 'रामचरितमानस'

तन्मयता का अभाव है, तो भी शास्त्रीय पद्धति पर साहित्य मीमांसा का मार्ग प्रशस्त करने के लिए हिन्दी साहित्य पर इनका ऋण बना रहेगा। इनका मृत्यु-काल वि० सं० १६७४ के आसपास है।

रसखान—

इनका जन्म विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दिल्ली के एक पठान सरदार के घराने में हुआ था। ये बड़े कृष्ण भक्त और गोसाईं विट्ठलनाथजी के कृपापात्र शिष्य थे। कहते हैं, कि जिस स्त्री पर ये आसक्त थे, वह इनका अनादर किया करती थी। एक दिन श्रीमद्भागवत के फारसी अनुवाद में कृष्ण के प्रति गोपियों की अनन्य भक्ति और अलौकिक प्रेम का वर्णन पढ़कर इन्हें ख्याल हुआ कि जिसपर इतनी गोपियाँ अपने प्राण न्यौछावर करती हैं, उसी वृन्दावन विहारी से क्यों न मन लगाया जाय। इसी बात पर रसखान वृन्दावन चले गये। इन्होंने अपने पद्यों में ऐसे सुन्दर उद्‌गार प्रकट किये कि सर्वसाधारण में प्रेम या शृङ्गार-सम्बन्धी कवित्त सवैयों की 'रसखान' संज्ञा प्रचलित हो गई, जैसे 'कोई रसखान सुनाओ'। इनकी भाषा सरस, चलती और शब्दाडम्बर-शून्य होती है। अब तक इनकी दो छोटी छोटी पुस्तकें—'प्रेमवाटिका' (दोहे, रचना-काल वि० सं० १६७१) और 'सुजान रसखान' (कवित्त-सवैया)—प्रसिद्धि में आई हैं। इनकी पद्य रचना का परिमाण अधिक न होने पर भी वह अनुप्रास तथा भावों की सुन्दर छटा के साथ प्रेमियों के लिए मर्मस्पर्शिनी है। इस पुस्तक के पद्य 'रसखान और घनानन्द' से लिए गए हैं। वस्तुतः रसखान की कविता 'यथा नाम तथा गुण' को चरितार्थ करती है।

बिहारीलाल—

बिहारीलाल चौबे ब्राह्मण थे। इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुवा गोविन्दपुर गाँव में वि० सं० १६६० के लगभग माना जाता है। इन्होंने बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में बिताई और जवानी अपनी ससुराल मथुरा में। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबार में रहे जहाँ

गणना उच्च कोटि के भक्त कवियों (सगुण धारा, कृष्ण शाखा) में होती है और हिन्दी स्त्री-कवियों में इनका सर्वोच्च स्थान है। मीराँबाई के पदों (भावपूर्ण भजनों) का, जिनमें हृदय की मर्मस्पर्शिनी वेदना और भक्त की प्रेममय तल्लीनता की स्रोतस्विनी बहती है, राजस्थान, गुजरात आदि प्रान्तों में बहुत प्रचार है। मीराँ की कविता की भाषा राजस्थानी और सुगम ब्रजभाषा या इनका मिश्रण है।

केशवदास—

इनका जन्म वि० सं० १६१२ में ओड़छा के एक समाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके घराने में बराबर संस्कृत के अच्छे पण्डित होते आये थे। ये अपने समय में प्रधान साहित्य शास्त्रज्ञ कवि माने जाते थे। इनके समय से कुछ पूर्व ही रस, अलङ्कार आदि काव्याङ्गों के निरूपण की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट हो चुका था। संस्कृत के विद्वान् होने से इन्होंने भी अलङ्कार और रस शास्त्र पर क्रमशः 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ लिखे। इनके प्रबन्ध-काव्य 'रामचन्द्रिका' की भी, जिसका एक अंश इस सङ्कलन में उद्धृत है, पर्याप्त प्रसिद्धि है। इसमें अलङ्कारों की बहुत भरमार है और सम्बन्ध निर्वाह जैसा चाहिए वैसा नहीं हो सका। जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ "केवल चमत्कार और शब्द-कौशल दिखाने के लिए रचा गया है, न कि हृदय की सच्ची प्रेरणा से।" उपर्युक्त तीन ग्रन्थों के सिवा इन्होंने चार और पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'विज्ञान-गीता' मुख्य है। केशवदास की कविता के सम्बन्ध में यह कहावत प्रचलित है कि "कवि को दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई।" केशव बड़े रसिक जीव थे। अपनी वृद्धावस्था में एक बार जब ये कुएँ पर बैठे हुए थे, स्त्रियों ने इनको 'बाबा' शब्द से सम्बोधन किया, इसपर इन्होंने पश्चात्तापपूर्वक यह दोहा कहा था—'केसव केसनि अस करी बैरिहु जस न कराहिं। चन्द्रवदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं॥' यद्यपि केशवदास की वाणी में सूरदास और तुलसीदास की सरसता एवं

किन्तु हिन्दू जाति के इस प्रतिनिधि कवि ने अपनी कविता में अपने हृदय के सच्चे उद्गारों को प्रकट किया है। भूषण की यह विशेषता है कि इन्होंने अपनी लेखनी से मधुर और सुकोमल ब्रजभाषा में भी वीर रस का अविरल स्रोत बहाया है। 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल-दशक' इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनका मृत्युकाल संवत् १७७२ माना जाता है।

कविराजा बाँकीदास—

इनका जन्म वि० सं० १८३८ में जोधपुर राज्य के पचपदरा परगने के भाँडियावास गाँव में आशिया चारण कुल में हुआ था। बचपन में इन्होंने अपने पिता से ब्रजभाषा के गीत, कवित्त, दोहे आदि सीखकर काव्य रचना का श्रीगणेश किया था। सोलह वर्ष की आयु तक घर पर शिक्षा पाकर ये जोधपुर चले गये, जहाँ पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न गुरुओं से संस्कृत साहित्य, व्याकरण आदि विविध विषयों का अध्ययन करते रहे। जोधपुर के विद्या रसिक नरेश मानसिंहजी ने अपने गुरु से बाँकीदासजी की कवित्व शक्ति की प्रशंसा सुनकर इन्हें अपने दरबार में बुलाया। इनकी काव्य रचना से अत्यन्त प्रसन्न होकर उक्त नरेश ने इन्हें लाख पसाव (लक्षदान) तथा उसकी पूर्ति में दो गाँव दिये और इनसे भाषा-साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन किया। स्वतन्त्र प्रकृति के होने से बाँकीदास स्पष्ट वक्ता और निर्भीक कवि थे। ये डिंगल, ब्रजभाषा एवं संस्कृत के आशुकवि और उद्भट विद्वान् थे। इनकी डिंगल-पद्य-रचना असाधारण तथा प्रसाद-गुण सम्पन्न है और वीर रस की कविता अनुपम और ओजस्विनी है। इन्होंने विशेषतः डिंगल भाषा में छोटी-छोटी २४ पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'सूर छत्तीसी,' 'सींह छत्तीसी,' 'वीरविनोद,' 'धवळ-पच्चीसी,' 'दातार-बावनी,' 'नीति मंजरी,' (प्रस्तुत कविता इसमें उद्धृत है) 'मावड़िया मिजाज,' 'मोह मर्दन,' 'सुगल मुख-चपेटिका,' 'कुकवि बत्तीसी,' 'विदुर-बत्तीसी,' 'भुरजाल भूषण' तथा 'गङ्गालहरी' आदि १७ पुस्तकों का काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने 'बाँकीदास ग्रन्थावली' शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित किया है।

इन्हें एक-एक दोहे पर एक-एक अशरफी का मिलना ही इनके यथेष्ट सम्मान का परिचायक है। महाराज जयसिंह की इच्छा के अनुसार ये दोहे बनाते रहे। शनै शनै दोहों की संख्या बढ़ने पर इनका अपूर्व ग्रन्थ 'सतसई,' जिसमें लगभग ७०० दोहों का संग्रह है, तैयार हुआ। इस संग्रह के दोहे 'सतसई' से उद्धृत हैं। इस ग्रन्थ का जनता में इतना प्रचार हुआ कि इसपर दर्जनों टीकाएँ हो चुकी और अब तक नई नई होती जा रही हैं। इस मुक्तक काव्य में विविध विषयों के परस्पर असम्बद्ध फुटकर दोहों का संग्रह है। सतसई के दोहों में शृङ्गार रस की प्रधानता है। सुकवि बिहारीलाल की यह विशेषता है कि इन छोटे छोटे दोहों में भी इन्होंने बहुत गंभीर भाव भर दिये हैं। ग्रन्थ की रचना सादी और स्वाभाविक ब्रजभाषा में हुई है। वि० सं० १७२० के आसपास इनका स्वर्गवास माना जाता है।

भूषण—

वि० सं० १६७० में कानपुर जिले के तिकवाँपुर गाँव में भूषण का जन्म हुआ था। ये सुप्रसिद्ध कवि मतिराम और चिन्तामणि के भाई तथा वीर रस के विख्यात कवि हुए हैं। इनके असली नाम का पता नहीं चलता। चित्रकूट के राजा रुद्रराम सोलंकी से इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि मिली थी, तभी से ये 'भूषण' नाम से ही प्रसिद्ध हुए। पन्ना-नरेश महाराज छत्रसाल ने इनका बड़ा सम्मान किया था। ये वीरकेसरी छत्रपति शिवाजी के दरबार में भी रहे थे। भूषण की रग रग में हिन्दू जाति का अभिमान भरा हुआ था, इसलिए उसका अधःपतन इनके लिए असह्य था। इसी से इन्होंने अन्याय दमन में तत्पर और हिन्दू धर्म के सच्चे संरक्षक दो इतिहास प्रसिद्ध वीर नरेशों—छत्रसाल और शिवाजी—की कृति को ही अपनी ओजस्विनी और वीरदर्पपूर्ण काव्य-रचना का विषय बनाया। भूषण की रचनाओं के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि झूठी खुशामद के लिए इन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा नहीं लिखी,

किन्तु हिन्दू जाति के इस प्रतिनिधि कवि ने अपनी कविता में अपने हृदय के सच्चे उद्गारों को प्रकट किया है। भूषण की यह विशेषता है कि इन्होंने अपनी लेखनी से मधुर और सुकोमल ब्रजभाषा में भी वीर रस का अविरल स्रोत बहाया है। 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल-दशक' इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनका मृत्युकाल संवत् १७७२ माना जाता है।

कविराजा बाँकीदास—

इनका जन्म वि० स० १८१८ में जोधपुर राज्य के पचपदरा परगने के भाँडियावास गाँव में आशिया चारण कुल में हुआ था। बचपन में इन्होंने अपने पिता से मरुभाषा के गीत, कवित्त, दोहे आदि सीखकर काव्य रचना का श्रीगणेश किया था। सोलह वर्ष की आयु तक घर पर शिक्षा पाकर ये जोधपुर चले गये, जहाँ पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न गुरुओं से संस्कृत साहित्य, व्याकरण आदि विविध विषयों का अध्ययन करते रहे। जोधपुर के विद्या रसिक नरेश मानसिंहजी ने अपने गुरु से बाँकीदासजी की कवित्व शक्ति की प्रशंसा सुनकर इन्हें अपने दरबार में बुलाया। इनकी काव्य रचना से अत्यन्त प्रसन्न होकर उक्त नरेश ने इन्हें लाख पसाव (लक्षदान) तथा उसकी पूर्ति में दो गाँव दिये और इनसे भाषा साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन किया। स्वतन्त्र प्रकृति के होने से बाँकीदास एक स्पष्ट वक्ता और निर्भीक कवि थे। ये डिंगल, ब्रजभाषा एवं संस्कृत के आशुकवि और उत्कृष्ट विद्वान् थे। इनकी डिंगल-पद्य-रचना चमत्कारपूर्ण तथा प्रसाद-गुण सम्पन्न है और वीर रस की कविता अनुपम और ओजस्विनी है। इन्होंने विशेषतः डिंगल भाषा में छोटी-छोटी २४ पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'सूर छतीसी,' 'सीह छतीसी,' 'वीरविनोद,' 'धवळ-पचीसी,' 'दातार बावनी,' 'नीति मंजरी,' (प्रस्तुत कविता इससे उद्धृत है) 'मावड़िया मिजाज,' 'मोह मर्दन,' 'कुगल मुख चपेटिका,' 'कुकवि बत्तीसी,' 'विदुर बत्तीसी,' 'भुरजाल भूषण' तथा 'गंगालहरी' आदि १७ पुस्तकों को काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने 'बाँकीदास-ग्रन्थावली' शीर्षक से तीन भागों में प्रकाशित किया है।

बाँकीदास कवि ही नहीं, किन्तु इतिहासप्रेमी भी थे। इन्होंने बहुतसी ऐतिहासिक बातों का सुन्दर एवं बृहद् संग्रह किया था, जो अब तक अप्रकाशित है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र—

[आपका परिचय गद्य रत्न माला, पृ० ४८४-८५ में छपा है।]

आपकी भाषा ललित, ओजस्विनी और चुभती हुई है। कई एक सभाओं और क्लबों की स्थापना के अतिरिक्त आपने 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'हरिश्चन्द्र-मेगजीन' नामक पत्र पत्रिकाएँ निकालीं। भारतेन्दुजी ने कविता प्रवाह को बदल दिया, जिससे पुराने ढंग की कविता के स्थान में नई, भावपूर्ण और सामयिक पद्य रचना होने लगी। इनकी कविता ब्रजभाषा और खड़ी बोली में हुई है। शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती होने से इन्हें उर्दू मिश्रित भाषा पसंद नहीं थी। इनके लगभग २७ काव्यों में 'प्रेममाधुरी' तथा 'प्रेमफुलवारी' मुख्य हैं। 'गङ्गा-गरिमा' और 'पावस-मसान' 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक के, 'नारद की वीणा', 'वह छवि' एवं 'यमुना-वर्णन' 'श्रीचन्द्रावली' नाटिका के और 'प्रेम-महिमा' 'नील देवी' नामक ऐतिहासिक गीतिरूपक के उद्धरण हैं।

श्रीधर पाठक—

वि० सं० १९१६ में पाठकजी का जन्म आगरा जिले में जोंधरी गाँव के सारस्वत ब्राह्मण कुल में हुआ था। इन्होंने घर पर संस्कृत पढ़ी। स्कूल से एंट्रेंस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् इन्होंने सरकारी नौकरी कर ली। अपने कार्य में बड़ी तत्परता दिखाने से सरकार में इनकी बहुत प्रशंसा हुई। शनै शनै उन्नति करते हुए ये संयुक्त प्रान्तीय सरकार के दफ्तर के सुपरिंटेंडेंट बनाए गए। फिर पेंशन लेकर आप प्रयाग में रहने लगे। पाठकजी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अपनी कविता परन्तु इनकी ब्रजभाषा की काव्य रचना अधिक सरस और खड़ी बोली के प्रारम्भिक कवियों में थे। इनकी

काव्योपयोगी शब्दों का बहुत ध्यान रखा गया है। वस्तुत पाठकजी 'सुघराई' की मूर्ति और प्राकृतिक सौन्दर्य के बड़े उपासक थे। 'काश्मीर सुखमा' (इससे 'काश्मीरसुखमा' उद्धृत है), 'देहरादून', आदि रचनाओं में इनका प्रकृति प्रेम खूब झलकता है। इनके 'ऊजड ग्राम', 'श्रान्त पथिक' और 'एकान्तवासी योगी' शीर्षक अँगरेजी-कवि गोल्डस्मिथ के काव्यों के हिन्दी अनुवाद भी स्वतन्त्र रचनाओं जैसे सरस और सुन्दर हुए हैं। 'भारतगीत' में इनकी भारत विषयक कविताओं का सग्रह है। 'मनोविनोद' (इससे 'कायर', 'हिमालय' और 'वृन्दावन' उद्धृत हैं) में इनकी स्फुट कविताओं का सुन्दर सकलन हुआ है। 'वन शोभा' पद्य 'कविता कौमुदी' (भाग २) से लिया गया है। अँगरेजी और सस्कृत दोनों के काव्य-साहित्य से खूब परिचित होने से पाठकजी की रुचि अत्यन्त परिष्कृत थी। इनके पद्यों में चलती और रसीली भाषा के साथ कोमल एव मधुर सस्कृत-पद विन्यास देख पडता है। वस्तुत पाठकजी अत्यन्त भावुक, सुरुचिसम्पन्न एव प्रतिभाशाली कवि थे। कुछ वर्ष पूर्व इनका स्वर्गवास हुआ।

नाथूराम शंकर शर्मा—

शकरजी का जन्म वि० स० १९१६ में अलीगढ़ जिले के हरदुआगज कस्बे में हुआ था। तेरह वर्ष की आयु में आपने काव्य रचना का आरम्भ किया था। आपका हिन्दी के पुराने कवियों में स्थान है। पहले शकरजी ब्रजभाषा में बडी सुन्दर और गठी हुइ काव्य रचना करते थे। इस पुस्तक में सुभी हुई 'स्फुट पद्य'-शीर्षक रचना इनकी वियोग सम्बन्धी कविता का एक नमूना है। पीछे से आप खडी बोली में भी खूब लिखने लगे। आर्य समाज में अन्धविश्वास और सामाजिक कुरीतियों के उग्र विरोध की प्रवृत्ति बहुत समय तक जारी रही। आर्यसमाज से शर्माजी का सम्बन्ध रहने के कारण इनकी रचनाओं में भी उसी भतवृत्ति का आभास देख पडता है। फबतियाँ और फटकार इनके पद्यों की एक विशेषता है। वर्णवृत्त की भाँति मात्रिक और मुक्तक छदों में भी वर्णों की समान सख्या

रखकर आपने काव्य-सम्बन्धी एक कड़े नियम को निबाहा है। इनकी कविता में अनुप्रास, भाव-गाम्भीर्य और शब्द लालित्य खूब मिलता है। 'शंकरसरोज', 'अनुरागरत्न' और 'वायसविजय' आपके मुख्य ग्रन्थ हैं। कुछ वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हुआ है। आपके पद्य क्रमश 'सुधा' और कविता कौमुदी (भाग २) से उद्धृत हैं।

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—

बाबू जगन्नाथदासजी का जन्म वि० स० १९२३ में काशी के एक प्रतिष्ठित अग्रवाल-परिवार में हुआ था। इनके पिता बाबू पुरुषोत्तदास भारतेन्दुजी के मित्र थे। उनके सत्सग से रत्नाकरजी में भी काव्य की ओर अनुराग उत्पन्न हुआ और छोटी उम्र में ही ये कविता लिखने लगे। इनके पूर्वज बादशाही सेवा में उच्च पदों पर रहे थे, जिससे इनके घराने में फारसी का मान होता रहा। आपने भी बी० ए० परीक्षा के लिए फारसी पढ़ी थी और पहले उसी में कविता करते थे, परन्तु शनै शनै आप में हिन्दी प्रेम जागृत हुआ और हिन्दी में आपकी कवित्व शक्ति का विकास होने लगा। रत्नाकरजी प्राचीन साहित्य के अपूर्व मर्मज्ञ थे। इन्होंने अनेक प्राचीन काव्यों का सुसम्पादन कर उन्हें छपवाया और बिहारी की 'सतसई' पर 'बिहारी रत्नाकर' नाम की उत्कृष्ट टीका लिखी। अपने अन्तिम काल में आप 'सूरसागर' का सम्पादन कर रहे थे। रत्नाकरजी आधुनिक युग के ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। प्राचीन पद्धति पर लिखी हुई इनकी चुस्त और ओजस्विनी कविता को पढकर देव या पद्माकर का स्मरण होता है। 'हिंडोला', 'हरिश्चन्द्र', 'गंगावतरण', 'उद्धव शतक', 'कलकाशी' तथा 'शृंगारलहरी' आपकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'गंगावतरण' पर इन्हे हिन्दुस्तानी एकेडेमी से ५००) रु० का पुरस्कार मिला था। ई० स० १९३२ में इनका स्वर्गवास होने के पश्चात् काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने इनकी समस्त काव्य रचनाओं का 'रत्नाकर' शीर्षक अत्यन्त सुन्दर संग्रह प्रकाशित किया। रत्नाकरजी अयोध्या नरेश

के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् आप महारानी साहिबा के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे थे। इस पुस्तक की कविता 'रत्नाकर' से उद्धृत है।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—

उपाध्यायजी का जन्म वि० सं० १९२२ में युक्त प्रान्त के आजमगढ़ जिले के निजामाबाद कस्बे में सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। सं० १९३९ और १९४४ में क्रमशः वर्नाक्युलर मिडिल और नॉर्मल परीक्षा पास करने के पश्चात् आप अपने कस्बे के तहसीली स्कूल में अध्यापक और तदनन्तर कानूनगो रहे। कानूनगो पद से पेंशन लेकर आप काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय में अवैतनिक अध्यापक हुए। कविता के क्षेत्र में उपाध्यायजी का आसन बहुत ऊँचा है। अतुकान्त छन्द में लिखा हुआ आपका 'प्रियप्रवास' महाकाव्य, जिससे इस पुस्तक में 'प्रात काल वर्णन' लिया गया है, आधुनिक युग का एक अत्यन्त सुन्दर काव्य-ग्रन्थ है। इसमें मधुर व्यंजना के साथ संस्कृत गर्भित खड़ी बोली में गोप गोपिकाओं, यशोदा और राधा-कृष्ण के प्रेम का अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन है। उपाध्यायजी ने बोलचाल की भाषा में बड़ी चुटीली उक्तियाँ कही हैं, जिनमें यत्र तत्र मुहावरों और मुहावरों का बहुत उपयुक्त प्रयोग हुआ है। हरिऔधजी की यह विशेषता है कि आप सरल-से सरल या कठिन से कठिन दोनों प्रकार की पद्य रचना सफलतापूर्वक कर सकते हैं। आपकी रचनाओं में 'प्रियप्रवास', 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'बोलचाल' और 'रसकलस' उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। 'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास' विषय पर पटना विश्वविद्यालय में दिये गए आपके मननीय व्याख्यान गत वर्ष वृहद् ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हुए हैं।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त—

गुप्तजी का जन्म वि० सं० १९४३ में झाँसी जिले के चिरगाँव कस्बे में बाबू रामचरण गुप्त (अग्रवाल वैश्य) के यहाँ हुआ था। ये आचार्य महावीर प्रसादजी द्विवेदी के शिष्य और अनुयायी हैं। द्विवेदीजी की भाँति

रचनाओं में भी व्याकरण संबंधी त्रुटियाँ नहीं रहतीं। द्विवेदीजी के सम्पादन काल में इनकी कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होती रहती थीं। इनके 'जयद्रथ वध' काव्य में खड़ी बोली का अच्छा सौष्ठव देख पड़ता है, किन्तु 'भारत-भारती' पुस्तक इनकी सर्वप्रिय रचना हुई है। इस पुस्तक में गुप्तजी ने स्वच्छ और परिष्कृत खड़ी बोली में भारत की अतीत, वर्तमान और भावी दशा का वर्णन किया है। गुप्तजी की कविताएँ देशप्रेम से ओतप्रोत हैं, अत आप इस युग के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। आपके काव्यों ने नवयुवकों में राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ हिन्दी कविता के लिए प्रेम उत्पन्न किया है। आपने खड़ी बोली में उत्कृष्ट कविता रचकर लोगों के इस प्रारम्भिक विचार को निर्मूल सिद्ध कर दिया कि कविता के लिए खड़ी बोली उपयुक्त नहीं हो सकती। हिन्दी-काव्य-जगत् में आपका नाम जितना प्रसिद्ध हुआ, उतना सम्भवत और किसी कवि का नहीं। वि० सं० १९८८ में प्रकाशित 'साकेत' महाकाव्य आपकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। अपने कस्बे में ही आपने 'साहित्य प्रेस' खोला है। साहित्य सेवा ही आपके जीवन का व्यवसाय है। आपकी मौलिक रचनाओं में 'भारत भारती', जयद्रथ वध', 'साकेत', 'यशोधरा', 'हिन्दू', 'पचवटी', 'गुरुकुल', 'शकुन्तला' ('शकुन्तला की विदा' इसी से उद्धृत है), 'पत्र प्रबंध' ('मातृभूमि' उद्धृत है), 'झकार' ('झकार' और 'यात्री' उद्धृत है) एव 'त्रिपथगा' और अनुवादों में 'मेघनाद वध', 'विरहिणी ब्रजाङ्गना', 'वीराङ्गना', 'पलासी का युद्ध' और 'रुबाइयात उमर खय्याम' उल्लेखनीय हैं।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी—

त्रिपाठीजी का जन्म वि० सं० १९४६ में युक्त प्रान्त के जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव में हुआ था। आपने भारत में दूर दूर तक यात्रा कर अपने काव्यों में भूस्वर्ग काश्मीर, सेतुबंध रामेश्वर आदि देशों और स्थानों का सुन्दर प्रकृति वर्णन किया है। 'कविता-कौमुदी' के दो भागों में आपने ... और आधुनिक काल के प्रमुख हिन्दी-कवियों का परिचय पूर्ण

कविता संग्रह प्रकाशित किया है। आपका ग्राम गीतों का वृहत् संग्रह भी एक अनूठी वस्तु है। खड़ी बोली के कवियों में त्रिपाठीजी का सम्माननीय स्थान है। आपकी कविता सरस, सुबोध, मनोहारिणी और उत्कृष्ट भावों से ओतप्रोत होती है। भाषा संस्कृतमयी होने पर भी जोरदार और परिष्कृत है। 'पथिक' (जिसका 'प्रकृति वर्णन' एक उद्धरण है), 'मिलन' और 'स्वप्न' आपके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनके सिवा 'कविता कौमुदी' (६ भाग), 'रामों के चित्र', 'मानसी' आदि भी आपकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'कहाँ' और 'जागरण' कविताएँ क्रमशः 'माधुरी' और 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रन्थ' से उद्धृत हैं।

बाबू सियारामशरण गुप्त—

आपका जन्म वि० सं० १९५२ में हुआ था। आप कविवर श्रीमैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। अपने ज्येष्ठ भ्राता की भाँति आपने भी कवि हृदय पाया है। अपनी काव्य रचनाओं में आपने सामाजिक कुरीतियों पर हृदय में चुभनेवाली चुटकियाँ ली हैं। मैथिलीशरणजी की तरह इनकी भाषा भी संस्कृतमय, सरल एवं सुबोध खड़ी बोली है। इनकी कविता करुण रस प्रधान होती है। समय की पुकार को इनकी लेखनी ने जनता तक बड़ी सफलता से पहुँचाया है। आपकी रचनाओं में 'अनाथ', 'मौर्य विजय', 'दूर्वादल', 'विषाद', 'पाथेय' और 'आर्द्रा' (जिसका 'एक फूल की चाह' एक अंश है) उल्लेखनीय हैं। इधर कुछ समय से आप नाटक, उपन्यास और कहानियाँ भी लिखते हैं, जिनमें 'पुण्यपर्व', 'अन्तिम आकांक्षा', 'गोद' और 'मानुषी' मुख्य हैं।

ठाकुर गोपालशरणसिंह—

ठाकुर साहब का जन्म वि० सं० १९४८ में हुआ था। आप सेंगर वंशी क्षत्रिय और रीवाँ राज्य (मध्यभारत) में (नई गढ़ी के) प्रथम श्रेणी के सरदार हैं। आपकी स्कूली शिक्षा मैट्रिक तक हुई। तत्पश्चात् आपने स्वाध्याय से ही ज्ञानवर्धन किया है। बचपन से ही आपको

कविताप्रेम रहा है। बीस वर्ष की आयु में आपकी काव्य रचना का आरम्भ हुआ। पहले आप ब्रजभाषा में लिखते थे, पर पीछे से खड़ी बोली में कविता करने लगे। आपकी कविताएँ प्रायः 'सरस्वती' में छपती रही हैं। आपकी स्फुट कविताओं का एक सुन्दर संग्रह 'माधवी' नाम से प्रकाशित हुआ है, इसी से इस पुस्तक की कविताएँ ली गई हैं। ठाकुर साहब की एक विशेषता यह है कि आप पुराने कवियों के जैसे भावों को खड़ी बोली के साँचे में ढालकर उन्हें बड़ा सुन्दर बना देते हैं। आपकी कविता सरल, मनोहर, प्रवाहमयी और प्रसादगुण सम्पन्न होती है। खड़ी बोली में धाराधारी रचना में आप सफल हुए हैं।

श्रीयुत वियोगी हरि—

[गद्य रत्न-माला, पृ० ४०१ में आपका परिचय दिया गया है।] हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से आपको 'वीरसतसई' पर, जिसमें आपने ब्रजभाषा में भारत के प्रसिद्ध वीरों का सुन्दर प्रशस्तियाँ लिखी हैं, १२००) रु० का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है। वियोगी हरिजी ब्रजपति, ब्रजभाषा और ब्रजभूमि के अनन्य उपासक हैं। आपने प्राचीन कृष्णभक्त कवियों की शैली पर चुटीले रसीले पदों की रचना की, जिन्हें पढ़कर रसिक भक्त 'बलिहारी है' कहे बिना नहीं रहते। इस रूखे जमाने में ऐसी अनन्य प्रेमधारा बहुत कम लोगों में बहती है। 'वीरबत्तीसी' और 'वीरबाहु' क्रमशः 'वीरसतसई' और 'सुधा' से लिए गए हैं।

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त—

पं० सुमित्रानन्दन पन्त पहाड़ी ब्राह्मण हैं। इनका जन्म वि० सं० १९५८ में अल्मोड़े में हुआ था। इनके पिता अत्यन्त धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। पिता में जो सहृदय भावना धर्मनिष्ठा के रूप में विद्यमान थी, वही पुत्र में कवित्व-रूप में प्रकट हुई। पन्तजी ने एफ० ए० तक शिक्षा पाई, पर कॉलेज की अप्राकृतिक शिक्षा रुचिकर न होने से उसके बन्धन से मुक्त होकर आपने प्रकृति की गोद को ही अपना शिक्षणालय बनाया। कविता-

क्षेत्र में आपने नये ढग का पौधा लगाया है, इसी से आप हिन्दी-कविता के नवीन युग प्रवर्त्तक माने जाते ह। आपकी अपनी स्वतन्त्र शैली है, जिसमें भाषा सौष्ठव, प्रवाह और मधुरता देख पड़ती ह। इनकी भाषा सस्कृतमय खड़ी बोली है। अँगरेजी साहित्य के अनुशीलन के फलस्वरूप आपकी रचनाओं में अँगरेजी भावों का रहना स्वाभाविक है, पर वे शनै-शनै हिन्दी के अनुरूप होते जाते ह। आपके ग्रन्थों में 'उच्छ्वास,' 'वीणा,' 'पल्लव,' 'ग्रन्थि,' 'गुञ्जन' और 'ज्योत्स्ना' उल्लेखनीय ह। 'बादल' आपके 'पल्लव' का एक अश है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान—

श्रीमती सुभद्राकुमारी का जन्म वि० स० १९६१ म प्रयाग के एक क्षत्रिय कुल म हुआ था। इनकी शिक्षा प्रयाग के क्रॉस्थवेट गर्ल्स हाइ-स्कूल में हुई। स० १९७६ में खडवा के ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान, बी० ए०, एल्० एल्० बी० के साथ इनका विवाह हुआ और अब उनके साथ जबलपुर मे रहती ह। बाल्यकाल से ही इन्हे कविता की धुन रही है। इनके पिताजी की कविता और गान की ओर विशेष रुचि थी। उनके भजनों को सुनकर इनके मन में कविता की लहरें उठा करतीं। आजकल हिन्दी की कवियों में इनका सर्वोच्च स्थान है। वात्सल्य जीवन और देश प्रेम इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। इनकी कविता सुबोध, स्वाभाविक और भावमयी होती है। इनकी भाषा सीधी सादी खड़ी बोली है, जिसमें कहीं-कहीं उर्दू शब्द भी प्रयुक्त हुए ह। सुभद्राजी की सजीव वर्णन शैली से पाठक के सामने एक सुन्दर चित्र खिच जाता है। इनकी कवित्व शक्ति की यह एक विशेषता है कि किसी के कहने से या दी हुई समस्याओं पर सुन्दर कविता नहीं लिखी जाती, किन्तु हृदय में भावों के उमड़ने पर ही काव्य रचना होती है कि यही इनके पद्यों के हृदयग्राही होने का रहस्य है। इनका स्वभाव भावुक और पद्यों का सा सरल है, यही भावुकता और सरलता इनकी रचनाओं मे ज्यों-की त्यों झलकती है। इनकी काव्य-रचना

में शब्दाडम्बर अथवा कवित्व का शास्त्रीय पाण्डित्य नहीं देख पड़ता, किन्तु इनके स्थान में हृदय से निकली हुई सीधी और सच्ची बात है, जो पाठक के हृदय में चुभ जाती है। इनके 'बिखरे मोती' नामक कहानी-संग्रह और 'मुकुल' शीर्षक कविता संग्रह (इसमें तथा 'स्त्री कवि कौमुदी' से इस पुस्तक की कविताएँ ली गई हैं) दोनों पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने, भिन्न भिन्न अवसरों पर, सर्वश्रेष्ठ महिला लेखिका को दिया जानेवाला ५००) रु० का सेकसरिया पारितोषिक प्रदान किया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा, एम्० ए०—

आपका जन्म वि० सं० १९६४ में फर्रुखाबाद में बाबू गोविन्दप्रसाद वर्मा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० के यहाँ हुआ था। इनके पिताजी की स्त्री शिक्षा की ओर विशेष रुचि थी, जिसके फलस्वरूप महादेवीजी ने प्रयाग-विश्वविद्यालय की एम्० ए० परीक्षा पास की। शिक्षा के साथ-साथ इनमें कविता की ओर झुकाव बढ़ता गया और इनकी काव्य-रचना में गम्भीरता और स्थायित्व आता गया। नई धारा के कवियों में इनका नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। इनकी मधुर एवं संगीतमय कविताएँ एकदम भावुक जनों के हृदय में स्थान कर लेती हैं। आपका मत है कि कविता हृदय की एक 'फीलिंग' है, जो पॉलिश करने से निर्जीव हो जाती है, इसीलिए आप एक बार लिखी हुई कविता को ज्यों का त्यों रहने देती हैं। 'नीहार' (इस पुस्तक की 'उस पार' कविता इसका एक अंश है), 'रश्मि' और 'नीरजा' आपके मुख्य कविता ग्रन्थ हैं। अप्रैल सन् १९३५ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आपको 'नीरजा' पर सेकसरिया पारितोषिक मिला है।

बाबू राय कृष्णदास—

[आपके परिचय के लिए देखो गद्य-रत्न माला, पृ० ४९०-९१।]
आपका 'भावुक' शीर्षक पद्य-संग्रह उल्लेखनीय है। इस पुस्तक में आपकी कविताएँ क्रमशः 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ,' 'माधुरी' और 'सुधा' से ली गई हैं।

बाबू जयशंकर 'प्रसाद'—

आपका जन्म वि० सं० १९४६ में काशी के एक प्रसिद्ध वैश्य कुल में हुआ था। आपने घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, अँगरेजी और फारसी की शिक्षा पाई। बचपन से ही आपको कविता की रुचि रही है। आपने अतुकान्त कविता और रहस्यवाद सम्बन्धी काव्य रचना का आरम्भ किया। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण आपको कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह नाटक, काव्य, उपन्यास, कहानी सबके लिखने में सफलता प्राप्त हुई है। भावुकता और भावों की मौलिकता प्रसादजी की रचनाओं के विशेष गुण हैं। इनकी शैली में बंगला भाषा की, जिसका आपने अच्छा अध्ययन किया है, छाप देख पड़ती है। आपने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविताएँ की हैं। आप भावोपयोगी एवं संस्कृत गर्भित भाषा लिखते हैं। आपके कविता ग्रन्थों में 'मन्वन्तर,' 'कानन कुसुम,' 'झरना,' 'आँसू' और 'चित्राधार' मुख्य हैं। 'भारत महिमा' आपके 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' नाटक से उद्धृत है। [प्रसादजी के विशेष परिचय के लिए देखो 'गद्य-रत्न माला,' पृ० ४८३-८४]।

'नीति-मञ्जरी' पर टिप्पणी

पृ० २२ अहोणा—नहीं होनेवाला, अयोग्य। एह—यह। प्रकृत—स्वभाव। खल—दुष्ट, शत्रु। रामण—रावण। सोवनो—सुवर्ण का। सँधियाँ—सन्धि करने से। वचियौ—(बचा) बच सकता है? याँसूँ—इनसे। वीसरै—भूलता है। य—चौरीदास का कथन है। राकेस नूँ—पूर्णचन्द्र को। ऊचरै—बोलते हैं। वेण—वचन। किंपाक—वृक्ष विशेष। खार्धां—खाने से। वातों—बात ही बात में। विसारणा—उत्पन्न करना। सणाँ—मित्र जनों से। हासे—हँसी में। दोयण—दुर्जन।

पृ० २३ पाडण—गिराने को। आहिज—यही। बक मुनि—हे बगुले मुनि! फ्रत—कृत्य, कर्म। ऊपडे—प्रकट होते हैं। धरै—आगे। वाय—वायु। भीर—डरपोक के लिये।

मे शब्दाडम्बर अथवा कवित्व का शास्त्रीय पाण्डित्य नहीं देख पड़ता, किन्तु इनके स्थान में हृदय से निकली हुई सीधी और सच्ची बात है, जो पाठक के हृदय में चुभ जाती है। इनके 'बिखरे मोती' नामक कहानी-संग्रह और 'मुकुल' शीर्षक कविता संग्रह (इससे तथा 'स्त्री कवि कौमुदी' से इस पुस्तक की कविताएँ ली गई हैं) दोनों पर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने, भिन्न भिन्न अवसरों पर, सर्वश्रेष्ठ महिला लेखिका को दिया जानेवाला ५००) रु० का सेकसरिया पारितोषिक प्रदान किया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा, एम्० ए०—

आपका जन्म वि० सं० १९६४ में फर्रुखाबाद में बाबू गोविन्दप्रसाद वर्मा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० के यहाँ हुआ था। इनके पिताजी की स्त्री शिक्षा की ओर विशेष रुचि थी, जिसके फलस्वरूप महादेवीजी ने प्रयाग-विश्वविद्यालय की एम्० ए० परीक्षा पास की। शिक्षा के साथ-साथ इनमें कविता की ओर झुकाव बढ़ता गया और इनकी काव्य-रचना में गम्भीरता और स्थायित्व आता गया। नई धारा के कवियों में इनका नाम विशेषत उल्लेखनीय है। इनकी मधुर एव सगीतमय कविताएँ एकदम भावुक जनों के हृदय मे स्थान कर लेती है। आपका मत है कि कविता हृदय की एक 'फीलिंग' है, जो पॉलिश करने से निर्जीव हो जाती है, इसीलिए आप एक बार लिखी हुई कविता को ज्यों-का त्यों रहने देती है। 'नीहार' (इस पुस्तक की 'उस पार' कविता इसका एक अश है), 'रश्मि' और 'नीरजा' आपके मुख्य कविता ग्रन्थ है। अप्रेल सन् १९३५ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आपको 'नीरजा' पर सेकसरिया पारितोषिक मिला है।

बाबू राय कृष्णदास—

[आपके परिचय के लिए देखो गद्य-रत्न माला, पृ० ४९० ९१।]

आपका 'भावुक'-शीर्षक पद्य-सग्रह उल्लेखनीय है। इस पुस्तक में आपकी कविताएँ क्रमश 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ,' 'माधुरी' और 'सुधा' से ली गई है।

बाबू जयशंकर 'प्रसाद'—

आपका जन्म वि० सं० १९४६ में काशी के एक प्रसिद्ध वैश्य कुल में हुआ था। आपने घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, अँगरेजी और फारसी की शिक्षा पाई। बचपन से ही आपको कविता की रुचि रही है। आपने अतुकान्त कविता और रहस्यवाद सम्बन्धी काव्य रचना का आरम्भ किया। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण आपको कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह नाटक, काव्य, उपन्यास, कहानी सबके लिखने में सफलता प्राप्त हुई है। भावुकता और भावों की मौलिकता प्रसादजी की रचनाओं के विशेष गुण हैं। इनकी शैली में बँगला भाषा की, जिसका आपने अच्छा अध्ययन किया है, छाप दृग पड़ती है। आपने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविताएँ की हैं। आप भावोपयोगी एवं संस्कृत गर्भित भाषा लिखते हैं। आपके कविता ग्रन्थों में 'मन्वन्तर,' 'कानन कुसुम,' 'झरना,' 'आँसू' और 'चित्राधार' मुख्य हैं। 'भारत महिमा' आपके 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' नाटक से उद्धृत है। [प्रसादजी के विशेष परिचय के लिए देखो 'गद्य-रत्न माला,' पृ० ४८३ ८४]।

'नीति-मञ्जरी' पर टिप्पणी

पृ० २२ अहोणो—नहीं होनेवाला, अयोग्य। एह—यह। प्रकृत—स्वभाव। खळ—दुष्ट, शत्रु। रामण—रावण। सोव्रनो—सुवर्ण का। साँधियों—सन्धि करने से। बचियो—(क्या) बच सकता है ? याँसूँ—इनसे। बीसरे—भूलता है। नक—बाँकीदास का कथन है। राकेस नूँ—पूर्णचन्द्र को। ऊचरै—बोलते हैं। वैण—वचन। किंपाक—वृक्ष विशेष। न्याधाँ—खाने से। वातों—बात ही बात में। निसावणा—उत्पन्न करना। सैणाँ—मित्र जनों से। हासे—हँसी में। दोयण—दुश्मन।

पृ० २३ पाडण—गिराने को। आहिज—यही। बक मुनि—हे बगुल मुनि। क्रत—कृत्य, कर्म। ऊघडे—प्रकट होते हैं। धबै—आगे। वाय—वायु। भीर—डरपोक के लिये।

संशोधन

पृष्ठ	पंक्ति	मुद्रित	उचित
२	११	गजि रहे	गरजि भरें
२	२०	पड	पड़ै
३	५	नावति	नौवति
६	५	छाडावहिं	छोडावहि
७	५	करी	कग
१३	२१	अति फिरि	अलि थिरि
१४	५	जल पाइ	जलपाइ
१५	९	का	को
१६	१७	ये	मैं
२२	६	दुन	दुख
२२	१८	दायण	डोयण
२२	१९	भूँसे	मूँसे
२४	११	मरल	गरल
२४	१६	राति	राती
२६	१४	अकरन	अकारन
३२	१९	गमि	अति
३६	२१	ककि	केकि
३७	१४	दलित	ललित
४२	४	धरी	घरी
५८	९	अपने	आपने
५८	११	कृपनिधि	कृपानिधि
६०	६	ह	है
६१	६	सुति	स्रुति
६२	८	कतितट	कटितट
६२	१३	पहले	परसे
६५	१४	ही	दी
६८	८	चिंतिन	चितन
७६	१२	देगे	देखे
७६	१९	जानि	जाति
७८	९	से	ते
७९	१७	लाइ	लाई
८२	६	नहिं	नाहि
८२	१०	अनमोल	अनमेल
८८	३	परदर गगकै	पुरदर गग
९१	३ ४	जाइ नाइ	जोइ होइ
९५	२	हेर	हेरै
९५	४	हेर	हेरैं
९८	७	सुभ	सुभग
११५	७	हुआ	रहा
११७	१५	जाति	जाहि
११८	७	वाटिकानि	नाटिकनि
१२१	१७	सनयासिनि	सन्यासिनि
१२५	३	वोलियों	वेलियों
१२९	६	वरत	वरते
१३९	१५	विविधि	विविध
१४१	१९	शाति	शात
१५४	९	चम्क	चम्पक
१६०	७	खङ्ग-	खङ्ग
१७५	१२	स्वन	स्वप्न